श्री अरविन्द कर्मधारा

मार्च - अप्रैल

श्रीअरविन्द कर्मधारा
श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र
(मार्च - अप्रैल 2023
अंक - 2
सं स्थापक
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'
सम्पादन
अपर्णा रॉय
विशेष परामर्श समिति
सुश्री तारा जौहर, विजया भारती
ऑनलाइन पब्लिके शन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा
(निःशुल्क उपलब्ध)
कृ पया सब्सक्राइब करें-
saakarmdhara@rediffmail.com
कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810
आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

प्रिय पाठकों, श्रीअरविन्द का 150 वां सार्धशती महोत्सव चल रहा है। हम सभी उत्साहित हैं और श्री अरविंद के प्रति कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारे सामने अति मानसिक जगत के आरोहण की उद्घोषणा ही नहीं की बल्कि उसमें सहयोगी बनने के लिए हमारा मार्गदर्शन भी किया है। हमारा दायित्व बनता है कि हम उनके दिखाए मार्ग पर चलते हुए अपने जीवन के उच्चतम लक्ष्य (ईश्वर को पाना) को प्राप्त करने हेतु प्रयास करें तथा मानव जीवन पाने के सौभाग्य को सार्थक करें। जब भी श्री मां से पूछा गया कि इस दायित्व के निर्वाह के लिए हमें क्या करना चाहिए ? हमें अपने अंदर किन गुणों को विकसित करना चाहिए तो श्रीमां का उत्तर था," तुम्हें सत्य निष्ठ होना चाहिए ।जब मां से पूछा गया कि सत्य क्या है ?जवाब दिया गया," परम प्रभु की इच्छा ही परम सत्य है ,वह सत्य जिसे जानने के लिए व्यक्ति अथक प्रयास करता रहा है।"वे कहती हैं - "क्योंकि समूचा विश्व झूठ एवं मिथ्यात्व में प्रवेश कर गया है, अतः जो भी कर्म किए जाएंगे, झूठ पर आधारित होंगे, और यह अवस्था बहुत लम्बे समय तक बनी रह सकती है और इसी के कारण मनुष्य और देश तकलीफ झेलेंगे।

केवल एक मात्र उपाय है ,हम प्रार्थना करें, हृदय से भगवान के हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना करें, क्योंकि वही हमें सुरक्षित रख सकते हैं और जो लोग असत्य की इस सक्रियता से परिचित हो चुके हैं, उन्हें यह दृढ़ निश्चय करना चाहिए कि वे केवल सत्य के पक्ष में अडिग खड़े रहेंगे और सत्य के अनुसार ही समस्त कार्य करेंगे। इस निश्चय में समझौता नहीं होना चाहिए, यह अनिवार्य है, इसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं।

यदि समस्त अवस्थाएँ गलत और बदतर हो रही हों, और वास्तव में ये होंगी, क्योंकि असत्य के वर्तमान चल रहे आधिपत्य के कारण वे बनी रहेंगी , अतः हमें सत्य के पक्ष में अपने अडिग इरादे से, तनिक भी विचलित नहीं होना चाहिए। यही एकमात्र उपाय है।

वस्तुतः असत्य मृत्यु का सबसे बड़ा मित्र है। एक बार जब असत्य को जीत लिया तो समस्त कठिनाईयाँ दूर होंगी, किन्तु क्या सभी मानवीय सत्ताओं में झूठ सत्य मिश्रित नहीं है? यह पृथ्वी अभी तक अज्ञान और असत्य के द्वारा परिचालित है किन्तु सत्य की अभिव्यक्ति का समय आ रहा है। यह विश्व असत्य का स्थल है और केवल भगवान की उपस्थिति की नीरव गहराई में ही सत्य की अचंचल शान्ति को हम पा सकते हैं। सत्य असत्य से अधिक बलवान है, वह एक ऐसी अमर शक्ति है जो विश्व का संचालन कर सकती है। हमारा निर्णय होना चाहिये -

शब्दों में सत्य
कर्म में सत्य
संकल्प में सत्य
भावनाओं में सत्य

श्रीमाँ कहती हैं, “यह एक चयन है - सत्य की सेवा अथवा विनष्ट हो जाने के बीच मनुष्य का चयन है। “

एक अचल सत्यनिष्ठा ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए सुनिश्चित उपाय है। नष्ट होने से पूर्व असत्य पूरे जोश से ऊपर उठता है और आघात करता है। तो भी आश्चर्य है कि मनुष्य केवल विनाश के सबक को याद रखते हैं। इससे पहले कि वह आक्रमण करे,
क्या वे सत्य की ओर अपनी चेतना एवं दृष्टि खोलेंगे ?
मां ने कहा कि मैं लोगों को एक ‘प्रयास’ करने की सलाह देती हूँ जिससे यह अशुभ तत्त्व अपना सिर ऊपर न उठा सके और वह सलाह है :-

“दृढ़ता पूर्वक स्वीकार करो कि एकमात्र सत्य ही हमारी रक्षा कर सकता है।”
झूठ और असत्य में बहुत बड़ा फर्क है। जब मनुष्य झूठ बोलते हैं, वे शब्द हैं. जो उनके मुँह से आते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि तुम कहीं जाते हो और मानने से इनकार करते हो, अथवा तुमने कुछ गलत किया और तुम उसे मानने से इनकार करते हो. यह झूठ है, लेकिन झूठ में ताकत नहीं होती। झूठ हमेशा ही दुर्बलता का प्रतीक है और यदि कोई इसका अभ्यस्त हो जाता है तो यह कुटिलता का चिह्न है , लेकिन, असत्य एक गम्भीर बीमारी है। यह संसार अभी जैसा है, वह असत्य की
अवस्था है और यह अवस्था शाश्वत सत्य को अस्वीकार करती है। झूठ की तीन श्रेणियों हैं-पहली, वे लोग जो सत्य की अभीप्सा तो करते हैं, लेकिन सच्चाई और झूठ के बीच फर्क करने में समर्थ नहीं हैं और अपने विषय में पर्याप्त ईमानदार नहीं हैं। ऐसे लोग हमेशा संकट में पड़ते हैं और सत्य की ओर जाने वाले पथ से बिछुड़ जाते हैं...,

दूसरी स्थिति ज्यादा गम्भीर और खतरनाक है। ये स्थिति उन लोगों की है, जो झूठ और सत्य के बीच फर्क जानते हैं और यह भी जानते हैं कि सत्य अधिक श्रेष्ठ है; लेकिन
झूठ के प्रति अपने प्रलोभन को रोकने की क्षमता नहीं रखते और उसमें गिरते रहते हैं...,

तीसरी और अन्तिम श्रेणी बहुत खतरनाक है। यह उन लोगों की है, जो सत्य के जानकार तो हैं, लेकिन उसे मानने एवं पहचानने से इनकार कर देते हैं, वे जानबूझकर असत्य का चुनाव करते हैं और सच्चाई के प्रति एक प्रकार की घृणा रखते है। ये लोग शाश्वत की सूची में ‘खोयी हुई आत्मा’ के रूप में चिह्नित कर दिये जाते हैं। श्रीअरविन्द के महाकाव्य ‘सावित्री’ में इसी श्रेणी के लोगों के लिए बहुत सुन्दर पंक्तियाँ हैं

So might the one fell eternal’s road.
Forfeiting the spirit’s lonely channel in time. And no news of him reach the waiting gods.
Marked missing in the Register of Souls.

परन्तु, खुशी की बात है कि ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो जानबूझकर सत्य को अस्वीकार करके असत्य का चुनाव करते हैं, किन्तु झूठ में ही वे अपना जीवन व्यतीत करते है, क्योंकि सत्य के लिए उनमें संघर्ष करने की क्षमता नहीं होती और यदि वे लोग बिना प्रतिवाद किये उसी स्थिति में अपने को रहने देते हैं तो वे निश्चित ही असत्य में ही निवास करने के लिए बाधित हो जाएंगे क्योंकि यह संसार झूठ का संसार है। जो जीव आत्माएं पृथ्वी पर आती हैं और इसके दुखों संकट और कठिनाइयों को स्वीकार लेती हैं तो इसलिए कि वे झूठ और मिथ्यात्व को जीतना चाहती हैं और सत्य की विजय में मददगार बनना चाहती हैं, श्री मां उन्हें बहादुर आत्माएं पुकारती हैं। मां का कहना है कि वे लोग जो अपने मानसिक प्राणिक और शारीरिक अस्तित्व को नकार कर केवल आनंद में निवास करते हैं, उनके लिए कोई दुख व संघर्ष का प्रश्न ही नहीं रह जाता क्योंकि उनकी सत्ता अप्रभावी है ,अछूती है और वे जैसे हैं वैसे ही बने रहते हैं लेकिन वे आत्माएं जो पृथ्वी पर असत्य से आमने-सामने युद्ध करने के लिए आई हैं, सचमुच बहादुर आत्माएं हैं ,और भगवान का प्रेम उनके साथ है । यह संसार के सामने एक ठोस उदाहरण प्रस्तुत करने वाली सशक्त आत्माएं हैं।

मां के इस मार्गदर्शन और इस इस सत्य के उद्घाटन के पश्चात हमारे पास चुनाव की स्वतंत्रता है - "यह चयन है सत्य की सेवा अथवा विनष्ट हो जाने के बीच का चयन ।"
तो आइए हम सब मां के द्वारा दिए गए इस दायित्व निर्वाह के लिए मां के द्वारा प्रशस्त मार्ग का अनुसरण करें ,सत्य के मार्ग पर चलने क के लिए प्रतिबद्ध हों तथा अति मानस के इस आरोहण की तरफ गतिशील होकर श्री अरविंद के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन के संतोष से लाभान्वित हों।

हार्दिक शुभेच्छा सहित

अपर्णा

विषय-सूची

✦ अतिमानस का अवतरण	7
✦ ईश्वर की अराधना	12
✦ चलें, मिलें फोर्ड के जनरल मैनेजर से...	13
✦ जीना अधिकाधिक जीना जीवन का अक्षुण्ण कर्म	17
✦ पूर्णयोग	19
✦ डॉ. नीरदवरण	21
✦ माँ के कार्य का स्वरूप	28
✦ माताजी	31
✦ युग- पुरुष श्री अरविन्द	36
✦ श्री अरविन्द 'माँ' के विषय में	43
✦ श्री माँ का भारत- आगमन	46
✦ "आंतरिक सत्ता की मुक्ति"	52
✦ सत्यवान की धरती फिर से खोज रही	57
✦ आश्रम-गतिविधियाँ	58

अतिमानस का अवतरण

-बुद्धिप्रकाश वाजपेयी

विकास का क्रम अब तक मानस तत्त्व तक पहुँचा है। जब तक अतिमानस का अवतरण पूर्ण रूप से जगत में नहीं होगा, विकास मानव तत्त्व के ऊपर नहीं जा सकता। यह अवतरण अवतार मात्र नहीं है। अवतार धर्म संस्थापना के लिए होता है किन्तु अतिमानस का अवतरण का तात्पर्य है यह प्रदर्शित करना कि मानव भी ईश्वर हो सकता है। अवतार इसी का संकेत है, अतिमानस का अवतरण उस संकेत को पूर्ण करता है। अवतरण की श्रृंखला में सबसे ऊपर अतिमानस है और सबसे नीचे जड़ तत्त्व। अतिमानस तथा जड़तत्त्व के बीच चेतना में कई स्तर हैं जिनमें होकर चेतना अब अतिमानस के अवतरण तक पहुँच पायी है।

यह पूछे जाने पर कि पश्चिम के कुछ लोग कहते हैं कि ईसा मसीह नाम का कोई व्यक्तित पैदा ही नहीं हुआ, श्रीअरविन्द का जवाब था कि ईसा नाम से कोई शरीर इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ कि नहीं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण बात तो यह है कि ईसा मसीह आज भी हम सबके बीच विद्यमान हैं। राम नाम से कोई विभूति अवतरित हुई कि नहीं, इस बात की ऐतिहासिकता में नहीं जाना चाहिए क्योंकि क्या पता कि राम का अवतरित चरित्र वाल्मिकी कवि की कल्पना ही हो। परन्तु कवि ने जो चरित्र चित्रण किया है और वह आज हमारे बीच इतना व्यापक हो गया है यह अधिक महत्त्वपूर्ण बात है। कृष्ण के सम्बन्ध में भी नाना लीलायें बाद में ही जुड़ी हुई हैं। जिस रूप में उनका देवकी के पुत्र रूप में और एक द्वीप निवासी रूप में उपनिषद् में वर्णन है वह कुछ दूसरा ही ऐतिहासिक रूप रहा होगा। जैनी लोग तो कृष्ण को महाभारत की हिंसा कराने के कारण सातवें नरक में मानते हैं और साथ यह भी मानते है कि उनका अगला जन्म जैन तीर्थकरों में होगा। बंगाल में मुसलमानों ने तो राम को भी मुसलमान धर्म मनवा लिया और अनकों ग्रन्थ इस बात को प्रमाणित करने में लिख दिये। इसलिये विविध धर्मों के विश्वास तो विचित्र ही रहे हैं , उनके ब्योरों की सच्चाई में न जाकर धर्म के भीतर जो आध्यात्मिकता है, उसको ही ग्रहण करना चाहिए। कर्मकाण्ड, जैसे काशी में मरने से मोक्ष होता है, आदि तमाम धार्मिक मान्यताओं में वर्णित देवी-देवताओं के किस्से, उनकी हजारों वर्ष की आयु आदि के उल्लेखों के विषय में भी यही समझना चाहिए कि वे संस्कृत साहित्य के कवियों की रचनायें हैं। कवि इतिहास का भी प्रयोग करता है और कल्पना का भी ।

वैसे देवताओं के लोक भी हैं। वे सब अधिकांशतः अतिमानस चेतना स्तर पर की दिव्य शक्तियां हैं। वहाँ तक पहुँचकर उन्हें देखना बड़ा मुश्किल है। उन देवताओं के अपने-अपने दिव्य शरीर हैं जो कि मानव के सदृश हैं, तभी वेदों ने उन्हें पुरुष कहा है। इन देवताओं की एक तारतम्य श्रृंखला है और उन सब की सृष्टि लीला में अपनी-अपनी भूमिका है। जो लोग उनकी उपासना करते हैं उनको वे देवता अपनी उपासना छोड़ आगे नहीं बढ़ने देते। वे प्रसन्न होने पर भौतिक इच्छाएँ भी पूरी करते हैं। असुर लोग खतरनाक होते हैं, वे अपने उपासकों से अपना स्वार्थ सिद्ध कर उन्हें छोड़ देते हैं। जब पृथ्वी लोक का कोई व्यक्ति साधना कर

आत्म-विकास कर रहा होता है तो सुर-असुर दोनों ही उसे ऊँचे उठने में नाना प्रकार के विघ्न उत्पन्न करते हैं। इन सुरों की विकास प्रक्रिया हम लोगों जैसी नहीं है क्योंकि इनमें चेतना की अभिव्यक्ति बहुत ही व्यापक रूप से है, परन्तु फिर भी ये लोग तपस्या द्वारा चेतना की अधिक उच्चतम अवस्था को प्राप्त करने में लगे रहते हैं। स्वभाव से ये बहुत ही अभिमानी एवं स्व-केन्द्रित होते हैं। कभी-कभी पृथ्वी पर अपने भोग के लिए अथवा पूजन करवाने के लिए प्रकट होते हैं। सामुदायिक चेतनायें भी होती हैं। जिन्हें हम राष्ट्र देवता कह सकते हैं, जैसे भारत माता, चीन के देवता आदि। इनकी स्वरूप वैसे तो उस राष्ट्र के सामूहिक व्यक्ति चेतना से निर्मित रहता है, किन्तु साथ ही इनकी विशिष्ट चेतना तथा पृथक व्यक्तितत्व भी होता है जो कि अपने राष्ट्र को सुनियोजित करने का कार्य करता है ।

श्रीमाँ एक जगह पर कहती हैं कि विश्व में तारतम्य है जिसका ज्ञान हमें अभी नहीं हो पा रहा है और जिस किसी को होता भी है तो वह उस प्रकार जैसे कि किसी वस्त्र में सैकड़ों छिद्र हों जो कि तारतम्य की तालमेल की संगति न बैठा पा रहे हों। परन्तु जब अतिमानस का अवतरण पूरी तरह पृथ्वी पर हो चुकेगा तो लोगों को इस तारतम्य का ज्ञान हो जाएगा और अपना स्थान स्पष्ट दिखाई देगा। अभी भी कुछ लोग योगाभ्यास करके व इस स्थूल शरीर को छोड़ स्थूल जगत से भिन्न जो दिव्य सत्ताएँ हैं वहाँ के निवासियों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं और अपनी जिज्ञासा की संतुष्टि करते हैं। मैं एक अंग्रेज महिला को जानती हूँ जिसने अपने स्थूल शरीरों को ही नहीं, बल्कि उस स्थूल के भीतर के अन्य 11 स्थूल शरीरों को क्रमशः त्यागकर हर सूक्ष्म शरीर द्वारा उससे सम्बन्धित लोकों की जानकारी करती फिरती थी। उसके अनुभवों के संकलन की पुस्तक का मैंने फ्रेंच में अनुवाद भी किया है। वस्तुतः इस पृथ्वी से इतर असंख्य लोक हैं। किन्तु जब साधक में आध्यात्मिक उन्नति होती है और उसमें चेतना का रूपान्तर होता है तभी इन नाना लोकों का साक्षात्कार संभव है। अधिकांश व्यक्ति मरने के बाद तो मानसिक लोक में ही रह जाते हैं। इस मानसिक लोक के तत्व ऐसे हैं कि वहाँ जाकर व्यक्ति जो भी कल्पना करता है उसे वही अनुभव होने लगता है। जो लोग नरक यातना का विश्वास लेकर स्वर्ग की कल्पनाएँ बनाकर पहुँचते हैं, उन्हें वहाँ उसी प्रकार के दृश्य सत्य के समान दिखते हैं। वैसे तो सिवाय एक लोक के बाकी सभी लोक इस पृथ्वी से अच्छे हैं। जो लोक पृथ्वी से बुरा है वह एक तरह का नरक यातना का क्षेत्र है जहाँ मलिन विचार वाले अपनी निर्मित की हुई वासना की जिन्दगी में विचरते हैं।

साधकों के लिए इस सम्बन्ध में श्रीअरविन्द महर्षि एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कहते हैं कि यदि साधक को अपनी आध्यात्मिक प्रगति शीघ्रगामी बनाये रखना है तो उसे पृथ्वी से इतर जिस किसी उच्च लोक की चेतना का भान हो उससे एकदम अविर्भूत न हो जाये, बल्कि दृष्टा के रूप में उसको पूर्ण सत्य का एक सापेक्ष स्वरूप समझ उसकी अनुभूति करे।

जीवात्मा-आत्मा ब्रह्म है। जब ब्रह्म अपनी अन्तर्निहत बहुविधता को व्यक्त करता है, तब 'बहु' रूप आत्मा उस अभिव्यक्ति के लिए केन्द्रीय पुरुष जीव बन जाता है। इस केन्द्रीय पुरूष जीव के दो स्वरूप होते हैं- ऊर्ध्व में यह जीवात्मा रूप हमारा स्वरूप होता है जिसे हम आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर अनुभव करते हैं। और नीचे हृदय गुफा में अवस्थित हृत्पुरूष है जो मन, शरीर और प्राण के परे अधिष्ठित रहता है। जीवात्मा अध्यक्ष रूप से जीवन की गतिविधियों के ऊपर रहता है और जन्म-मृत्यु के भी परे रहकर सांसारिक

जीवन के विकास का नेतृत्व करता है, हृत्पुरुष जीवन की गति विधियों के पीछे रहकर उसको धारण करता है। विश्व की मनोमय, प्राणमय और अन्नमय प्रकृति है। इनके अंश को ग्रहण कर व्यष्टिगत मन, प्राण और शरीर बनते हैं। हृत्पुरुष अन्तराआत्मा इस मन-प्राण और शरीरवाली अपरा प्रकृति के परा-प्रकृति से आता है और उन्हें परा-प्रकृति में रूपान्तर करने का ही प्रयत्न करता है।

इस कारण हृत्पुपुरुष जिसे हम अहं कह सकते हैं, प्रत्येक बार जन्म ग्रहण करता है और प्रत्येक बार उसके पूर्व विकास और भविष्य की आवश्यकतानुसार मन, प्राण और शरीर विश्व-प्रकृति के उपादानों से निर्मित होते हैं। जब शरीर नष्ट होता है, तब प्राण प्राणमय लोक में चला जाता है और वहाँ कुछ काल तक रहता है, पर कुछ दिन बाद प्राणमय कोष नष्ट हो जाता है। उसके बाद नष्ट होता है मनोमय कोष। फिर हृत्पुरुष चैत्यलोक में चला जात है और वहाँ नवीन जन्म लेने का समय आने तक विश्राम करता है, जो अनुभव अभी तक उसे प्राप्त हुए हैं उनके सारतत्व को ग्रहण कर आगे होनेवाले अपने विकास-क्रम का आधार बनाता है। जब वह पुनः जन्म लेता है तब वह अपने मनोमय, प्राणमय, अन्मय कोषों के साथ अपना उतना ही कर्म संग ले लेता है जितना की इस पृथ्वी के जीवन में आगे के लिए आवश्यक है।

उपनिषदों में दूसरे जन्म लेने का जो तरीका लिखा है कि आत्मा वर्षा से खेत में गिरती है , फिर बीज बनकर अन्न बनती है और माता पिता के वीर्य में पहुँचकर जन्म लेती है , श्रीअरविन्द कहते हैं कि यह बात मेरी समझ में नहीं आती। हो सकता है किन्हीं परिस्थितियों में किसी ऋषि का ऐसा अनुभव रहा हो। परन्तु मैंने जिन आत्माओं को जन्म लेते देखा है। उन्हें शिशु के पैदा होने पर पहली चीख लगाने पर देखा है। और जो लोग शरीर छोड़ते हैं वे दूसरे लोकों में जाकर सैकड़ों व हजारों वर्ष तक वहाँ विश्राम लेते तथा भूतल यात्रा के अनुभवों को पचाते हुए देखे जाते है। जो लोग इस पृथ्वी पर पुनर्जन्म के लिए आते हैं वे अपने सूक्ष्म शरीरों को सूक्ष्म लोक के साथ ले लेते हैं। मनुष्य के जो विचार उपजते हैं वे भी मानसिक लोक से मानव मन में आते हैं और शरीर की स्थूलता से थोड़े बहुत परिवर्तन हो जाते हैं। यह सूक्ष्म शरीर आगे होनेवाले अपने विकास-क्रम का आधार बनाता है। जब वह पुनः जन्म लेता है तब वह अपने मनोमय, प्राणमय, अन्नमय कोषों के साथ अपना उतना ही कर्म संग ले लेता है जितना कि इस नष्ट जीवन में आगे के अनुभव के लिए आवश्यक हो।

सामान्य विकासवाले मनुष्यों की यही गति है। इसमें फिर वैयक्तिक स्वभाव और विकास के अनुसार अनेक भेद है। उदाहरणार्थ, यदि मन का सुदृढ़ विकास हुआ हो तो मनोमय सत्ता बनी रह सकती है। इसी प्रकार प्राण सत्ता भी रह सकती है बशर्ते कि वास्तविक हृत्पुरुष के द्वारा ये सुव्यवस्थित हुई हो और हृत्पुरुष के घेरे में आ गई हो। इस प्रकार मनोमय और प्राणमय सत्तायें भी हृत्पुरुष के अमृत तत्व में हिस्सा बँटाती हैं। असल जीव के प्राणमय अंश के लिये ही श्रद्धादिक क्रिया-कर्म किए जाते हैं, जिसमें भूलोक या प्राणमय लोकों (भूलोक) की आसक्ति में उसे बाँध रखनेवाले प्राणगत स्पन्दनों से मुक्त होने में जीव की सहायता हो और वह शीघ्रता से चैत्य लोक (स्वर्गलोक) की शान्ति में जाकर विश्राम कर सके और आत्मानन्द का लाभ प्राप्त कर सके ।

हम जो यह जड़ जगत देखते है, इसको आवृत्त किए हुए प्राणमय लोक है और प्राणमय लोक को भी आवृत्त किये हुए उससे सूक्ष्म मनोमय लोक है। विकास-क्रम में सबसे पहले जड़तत्व ही संगठित होता है। फिर उसमें प्राणलोक से प्राण तत्त्व उतर आता है और जड़ तत्त्व में प्राण को रूप प्रदान करता है, संगठित करता है और क्रियाशील बनाता है, वनस्पतियों तथा पशुओं को उत्पन्न करता है, तब मनोमय लोक उतरकर मनुष्य का सृजन करता है। अब अतिमानस तत्व उतरनेवाला है जिसमें कि अतिमानव जाति उत्पन्न हो। व्यष्टिगत मनुष्य का देह , प्राण और मन इस बाह्य पार्थिव, प्राणमय और मनोमय लोक का ही अंश है किन्तु उनसे भिन्न भी है। प्राण वह जीवन प्रकृति है जो वासना, आवेग, क्रोध, भय, लोभ, लोलुपता आदि के संकीर्ण भावों से बनी हुई होती है। मन प्रकृति के उस भाग का सूचक है जिसका सम्बन्ध पदार्थ बौद्धिक प्रतिक्रिया, संकल्प, बुद्धि आदि से है। यद्यपि मन और प्राण एक दूसरे से स्वतंत्र शक्तियाँ हैं और योग की उच्चावस्था में पृथक-पृथक दिखाई भी देने लगते हैं, किन्तु सामान्य मनुष्य की चेतना में एक-दूसरे से मिले रहते हैं। इस सम्मिश्रण में अवचेतना हम अपनी सत्ता के उस भाग को कहते हैं जो सर्वथा दबा हुआ सा रहता है, जिसमें कोई जागता हुआ चेतन व सुसंबद्ध विचार नहीं उठता, फिर भी जो सब दृश्य चीजों के संस्कार बिना जाने ग्रहण करता और अपने अन्दर संचित रखता है। इस संचय से नाना प्रकार की उत्तेजनायें, बेढंगा व्यवहार और विचित्र स्वप्न उठते हैं। इस अवचेतन भाग में एक धुंधला सा मन होता है जिसमें हमारे कर्म संस्कार भरे रहते हैं। इसमें धुंधला सा प्राण भी होता है जिसमें अभ्यासगत वासनाओं व संवेदनाओं के बीज भरे रहते हैं। इसमें एक अति ही सुप्त तमोवृत्त शरीर तत्व भी होता है जो शारीरिक अवस्था में सम्बन्ध रखनेवाले बहुत बड़े कार्य का नियामक है। हमारी बीमारियों का मूल प्रायः इसी में होता है। सुप्त मनोवृत्त शरीर, प्राण, मन का हमारे अवचेतन में कभी ऐसा जटिल सम्मिश्रण हो जाता है कि मन तो किसी उच्च आदर्श को स्वीकार करता है पर प्राण के संवेगों के प्रभाव अन्तर्विरोध को जन्म देता है और साधना की अधिकांश तीव्र कठिनाइयों का कारण बनता है।

फिर एक बात और। मनुष्य का मन तो ऐसा है कि इसे कुछ-न-कुछ कर सकने वाला व्यर्थ का दर्प हुआ करता है ओर उस दर्प में आकर वह भिन्न-भिन्न स्थितियों के सत्य को छाँटने लगता है और अन्य सब सत्यों को असत्य, अलीक कहकर, उच्चतम सत्य की ओर कूद पड़ता है, यह एक प्रकार का महत्वाकांक्षा से भरा गर्वमात्र ही है। बात यह है कि जो कोई सीढ़ी पर मजबूती से पैर रखकर, स्थिर होकर ऊपर उठना होगा, तभी वह शिखर तक पहुँच सकता है। लेकिन जब वह अतिमानस के शिखर तक पहुँच जाता है तो वह शरीर व मन के हर क्लेश से मुक्त हो जाता है, प्राण शरीर की हर वासना के ऊपर उसका अधिकार हो जाता है और शरीर की सारी बीमारियाँ अतिमानस के आरोहण पर सदैव के लिये दूर हो जाती हैं उसका व्यक्तित्व हर तरह से पूर्ण हो जाता है । जोकि सामान्यतः योगियों में ऊर्ध्वमन के आरोहण तक सम्भव नहीं हो पाता है।

कर्मः कर्म के सर्वथा त्याग और पूर्णतया अपने-आप में ध्यान मग्न होने से केवल मनोमय अवस्था बनती है जिसमें साधक एक ऐसे मध्य जगत में रहता है जहाँ केवल आन्तरिक अनुभव का वह ठीक उपयोग नहीं होता जिससे परम सत्य तथा बाह्य जीवन के बीच सुदृढ सम्बन्ध और फिर दोनों की एकता स्थापित हो। फिर व्यक्ति और जगत दोनों परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। जब व्यक्ति अपने मन, प्राण और शरीर जिनका समाज से सम्बन्ध है, की उपेक्षा कर देता है, तो समाधि में तो वह आनन्द ले सकता है। परन्तु

जब वह सामान्य व्यवहार के स्तर पर आता है तब प्रायः राग-द्वेषादि तथा सामान्य सुख-दुख में पड़ जाता है। कारण, व्यक्तिगत मन, प्राण और शरीर सार्वभौम मन, प्राण और शरीर के अंश मात्र हैं और ये अंश पूर्णतया तब तक रूपान्तरित नहीं हो सकेंगे जब तक सार्वभौम तत्व में परिवर्तन नहीं आ जाता।

शरीर, प्राण और मन वास्तव में वैश्व तत्व हैं, परन्तु व्यक्ति में ये वैयक्तिक रूप धारण कर लेते हैं। हमारा शरीर व्यापक जड़ प्रकृति का ही एक खण्ड है, इसी प्रकार हमारा प्राण, हमारा जीवन तत्त्व और हमारा मन भी। हम अपने जीवन और विचारों को विशेष रूप से निजी समझते हैं और यह भूल जाते हैं कि प्राण, जीवन और मन एक व्यापक वैश्व तत्त्व जो सभी मानवों में प्रकट हो रहा हैं। प्रकट होने में वह हर एक में एक वैयक्तिक भाव ग्रहण कर लेता हैं। विचारों के जोड़-तोड़ अलग-अलग हो जाते हैं। तभी तो व्यक्ति दूर की वस्तुओं को अनुभव कर सकने अथवा दूसरे के विचारों को अक्षरशः पढ़ लेने की क्षमता विकसित कर पाता है। हर एक व्यक्ति के चारों ओर एक चेतना का फैलाव होता है जिनके द्वारा वह अपनी परिस्थिति के सम्पर्क को थोड़ी दूर से ग्रहण कर सकता है। परन्तु साधारणतया हम अपने इस चेतन भाग से सचेतन नहीं होते और इसी कारण जब तक हमें वस्तुओं का स्थूल सम्पर्क हमें इन्द्रियों द्वारा प्राप्त नहीं होता तब तक हमें उसका ज्ञान नहीं हो पाता। सम्मोहन (हिप्नोसिस) में व्यक्ति को किंचित मूर्छित कर दिया जाता है और तब उसकी गुह्य चेतना कार्य करने लगती है जो बिना इन्द्रियों के प्रयोग के दूर के पदार्थों को देख सकती है और उसका ज्ञान लाभ कर सकती है। योगविद्या द्वारा साधक इसी वृहत्तर चेतना के साथ संपर्क कर उसमें अवस्थित होने की ही साधना करता है।

असल में, मानव तत्त्व ज्ञान का साधन नहीं बल्कि ज्ञान की ओर प्रयुक्त होने का साधन है। वह ज्ञान की खोज के लिए आपेक्षिक चिंतन के कुछ रूपों में जो कुछ प्राप्त कर सके उसकी अभिव्यक्ति के लिए एक क्षमता है। इस तरह वह चेतन शक्ति की एक क्षमता है जो ब्रह्म को अभिव्यक्त करती है, ब्रह्म से जन्म लेती है और उसके स्वरूप के अंश प्राप्त करती है। एक प्रकार से वह ऐसी चेतन सत्ता है जो अपने अविनाशी और नित्य पदार्थ को अनित्य रूपों में डालती है, और फिर धीरे-धीरे उन रूपों से निकालने का क्रम चालू करती है।

विकास की मानसिक प्रक्रिया तो अपनी स्वाभाविक गति से चल रही है और बहुत शीघ्र ही वह समय भी आनेवाला है जब हमारी संकुचित बुद्धि की सीमाएँ विशाल होंगी और पाँच इन्द्रियों के अतिरिक्त कुछ नयी ज्ञानेन्द्रियाँ मानव को प्राप्त होंगी। परन्तु जो लोग निष्काम एवं निस्वार्थ कर्म सम्पादित कर योग की ध्यान-योग प्रक्रिया की साधना में रत हैं वे अपनी वर्तमान मन एवं बुद्धि की सीमाओं का अतिक्रमण अपने जीवन काल में ही कर जायेंगे।

ईश्वर की अराधना

एक पादरी महाशय समुद्री जहाज से यात्रा कर रहे थे, रास्ते में एक रात तुफान आने से जहाज को एक द्वीप के पास लंगर डालना पडा। सुबह पता चला कि रात आये तुफान से जहाज में कुछ खराबी आ गयी है, जहाज को एक-दो दिन वहीं रोक कर उसकी मरम्मत करनी पडेगी।

पादरी महाशय ने सोचा क्यों ना एक छोटी बोट से द्वीप पर चल कर घूमा जाये, अगर कोई मिल जाये तो उस तक प्रभु का संदेश पहुँचाया जाय और उसे प्रभु का मार्ग बता कर प्रभु से मिलाया जाये।

तो वह जहाज के कैप्टन से इज़ाज़त ले कर एक छोटी बोट से द्वीप पर गये, वहाँ इधर-उधर घूमते हुए तीन द्वीपवासियों से मिले। जो बरसों से उस सूने द्वीप पर रहते थे। पादरी महाशय उनके पास जा कर बातचीत करने लगे।

उन्होंने उनसे ईश्वर और उनकी आराधना पर चर्चा की उन्होंने उनसे पूछा- क्या आप ईश्वर को मानते हो? वे सब बोले- "हाँ..।"

फिर पादरी ने पूछा-"आप ईश्वर की आराधना कैसे करते हो?"

उन्होंने बताया- हम अपने दोनों हाथ ऊपर करके कहते है "हे ईश्वर हम आपके है, आपको याद करते है, आप भी हमें याद रखना..॥

पादरी महाशय ने कहा- "यह प्रार्थना तो ठीक नहीं है।"

एक ने कहा-"तो आप हमें सही प्रार्थना सिखा दीजिये।"

पादरी महाशय ने उन सभी लोगों को बाईबल पढ़ना, और प्रार्थना करना सिखाया। तब तक जहाज बन गया। पादरी अपने सफर पर आगे बढ़ गये...।

तीन दिन बाद पादरी ने जहाज के डेक पर टलहते हुए देखा कि वे तीनों द्वीपवासी जहाज के पीछे-पीछे पानी पर दौड़ते हुए आ रहे है। उन्होंने हैरान होकर जहाज रूकवाया, और उन्हें ऊपर चढ़वाया।

फिर उनसे इस तरह आने का कारण पूछा।

वे बोले, "फादर!! आपने हमें जो प्रार्थना सिखाई थी, हम उसे अगले दिन ही भूल गये। इसीलिए आपके पास उसे दुबारा सीखने आये है, हमारी मदद कीजिये।"

पादरी ने कहा-"ठीक है, पर यह तो बताओ तुम लोग पानी पर कैसे दौड़ सके?

उसने कहा-"हम आपके पास जल्दी पहुँचना चाहते थे, सो हमने ईश्वर से विनती करके मदद माँगी और कहा."हे ईश्वर!! दौड़ तो हम लेंगे बस आप हमें गिरने मत देना। और बस दौड़ पड़े।"

अब पादरी महाशय सोच में पड़ गये उन्होंने कहा- "आप लोग और ईश्वर पर आपका विश्वास धन्य है। आपको अन्य किसी और प्रार्थना की आवश्यकता नहीं है। आप पहले की तरह ही प्रार्थना करते रहें।"

ये कहानी बताती है.. ईश्वर पर विश्वास, ईश्वर की आराधना प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण है॥ संत कबीरदास ने कहा है..

"माला फेरत जुग गया, फिरा ना मन का फेर,
कर का मन का डारि दे, मनका-मनका फेर॥"

"हे ईश्वर!! दौड़ तो हम लेंगे, बस आप हमें गिरने मत देना॥....."

चलें, मिलें फोर्ड के जनरल मैनेजर से...

लगभग एक शताब्दी हो चुके हैं इस घटना के। जाहिर है उस समय न तो हिन्दुस्तान आजाद हुआ था, न पाकिस्तान बना था और लाहौर हमारे देश का ही एक अंग था। वहाँ स्कूल जाने वाले एक १७ वर्षीय बच्चे ने एक दिन सड़क पर एक गाड़ी को जाते हुए देखा। वह उसे देखता ही रह गया; उसे यह भी पता नहीं था कि यह क्या है? इसके पहले उसने न तो इसे देखा था और न ही ऐसी किसी चीज के बारे में सुना था। जब दूसरे दिन भी उसे वहीं वह दिखाई दी, तब उससे रहा नहीं गया और पूरी ताकत तो उसके पीछे दौड़ पड़ा। आखिरकार उसने उस गाड़ी को पकड़ ही लिया। उसने देखा उस गाड़ी पर लिखा था 'फोर्ड' और उसमें ५-६ गोरे बैठे थे। उसने उत्सुकता पूर्वक उनसे पूछा कि यह क्या है? अपने प्रश्नों के उत्तर से उसे पता चला कि इसे 'मोटर गाड़ी' कहते हैं, इसे श्रीमान फोर्ड ने बनाया है, और वे एक दिन में ऐसी कई गाड़ियाँ बनाते हैं। उसे यह भी पता चला कि श्रीमान फोर्ड अमेरिका में रहते हैं। उस बच्चे का मुंह आश्चर्य से खुला रहा गया। उसे कुछ समझ नहीं आया कि इतनी भारी-भरकम चीज क्यों बनाई गई, श्रीमान फोर्ड एक दिन में ऐसी कई मोटर गाड़ी कैसे बना लेते हैं और तो और ये अमेरिका क्या है और कहाँ है?

इसी उधेड़-बुन में वह स्कूल पहुँच गया। उसने अपने अध्यापक से पूछा कि यह अमेरिका क्या होता है और कहाँ है? अध्यापक ने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन उसे समझ नहीं आया। उसके भूगोल के अध्यापक ने उसे बताया कि ग्लोब की उल्टी-दिशा में अमेरिका है और जैसे हिन्दुस्तान है वैसे ही अमेरिका है लेकिन अमेरिका और हिन्दुस्तान में बहुत फर्क है। यह सुनकर बच्चे की उलझन और भी ज्यादा बढ़ गई। अगर, अमेरिका ग्लोब की उल्टी दिशा में है तो वहाँ लोग क्या सिर के बल खड़े रहते हैं, क्या वे गिरते नहीं, वे कैसी खड़े होते होंगे? और इससे भी ज्यादा वह परेशान हुआ इस बात से कि 'अमेरिका हिन्दुस्तान जैसा है लेकिन दोनों में बहुत फर्क है'। एक जैसा भी है और बहुत फर्क भी है, ये दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती है? खैर उसने उसी समय निश्चय किया कि उसे अमेरिका जा कर उस मोटर गाड़ी को बनाने वाले श्रीमान फोर्ड से मिलना है।

दिन-भर वह इसी उधेड़-बुन में रहता। उसके पिता मासिक ३० रुपए पाते थे। उसे पता था कि घर वाले कभी भी न तो सहमत होंगे और न ही उसे अमेरिका भेज सकेंगे। आखिरकार उसने चुपचाप भाग कर ही अपने सपने को साकार करने का निश्चय किया। एक दिन मौका देख कर उसने अपने पिता के कोट में हाथ डाला। उसे २९ रुपए मिले। उसके लिए यह एक बहुत बड़ी रकम थी। बिना किसी को बताये, चुपचाप लाहौर स्टेशन से ट्रेन पकड़ वह बंबई पहुँच गया।

बंबई तक का सफर तो आसान था। अब उसे अमेरिका जाना था। उसने सुना था 'पूछ-पूछ कर विलायत' जाया जा सकता है'। बस, उसने लोगों से पूछना शुरू किया 'अमेरिका कहाँ है और

कैसे जाएँ'? लोग बच्चे की बात सुनकर हँसते, उस पर ध्यान नहीं देते। बल्कि कई तो पूछते कि यह 'अमेरिका' क्या होता है?

उस बच्चे के लिए तो लाहौर ही सब कुछ था। उसके बाहर एक दिल्ली नाम की जगह भी थी और उसके बाद केवल बस मद्रास ही मद्रास। हाँ, एक और जगह थी जहां पानी के जहाज से जाते हैं, और वह जगह है विलायत। अब वह कैसे बताता कि अमेरिका कहाँ है। लेकिन सोचने पर एक बात समझ आई कि अमेरिका जाना तो पानी के जहाज से ही पड़ेगा। अतः अब उसने अपना प्रश्न बदल लिया। अब वह पूछ रहा था, 'समुद्र में जाने के लिए पानी का जहाज कहाँ मिलेगा'? अब लोग समझने लगे और उसे रास्ता बताने लगे। जीवन में हमारे साथ भी यही होता है। हमें अपना प्रश्न सही ढंग से करना नहीं आता, अतः उत्तर भी सही ढंग से नहीं मिलते। जब तक हम अपने प्रश्न ध्यान से नहीं करते हमें उसके उत्तर भी ज्ञान से नहीं मिलते। कुछ ही समय में वह बंबई के बन्दरगाह पर पहुँच गया।

लेकिन अब एक नयी समस्या! जहाज पर कैसे चढ़े और किस जहाज पर चढ़े। उसने फिर पूछना शुरू किया। लेकिन, न कोई बताने वाला और न ही उसकी बात को सुनने वाला। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी। वह सबसे पूछता रहा। तभी उसने देखा कुछ लोग विशेष पोशाक पहने जहाज की तरफ जा रहे हैं। उसे लगा ये जरूर जहाज के कर्मचारी होंगे। उसने उन्हें भी पूछा, लेकिन उन्होंने बच्चे की बात पर ध्यान ही नहीं दिया। तब तक एक अफसर-सा आता दिखा। उसने उसे पकड़ा। दैवयोग से वह उसी जहाज का कप्तान था और उसने उसकी पूरी बात सुनी। उसने संक्षेप में पूरी बात बताई। उस बच्चे के जज़्बात से वह अभिभूत हो गया। कैप्टन के कहने पर वह जहाज पर उसके बताये काम, जहाज के इंजिन में कोयला डालना, के लिए तैयार हो गया।

उस बच्चे का जहाज से अमेरिका सफर प्रारम्भ हुआ। काम न रहने पर वह जहाज के डेक आदि जगह पर घूमता और कैप्टेन के निजी कार्य करता। इन सब के बाद भी उसके पास काफी समय बचता। अतः उसने उसे और भी कुछ काम देने की याचना की। कैप्टन ने उसे जहाज के रेस्तरां में बैरे का काम करने का प्रस्ताव दिया जिसे बच्चे ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। अब वह अलग-अलग देश, संस्कृति, भाषा के अनेक लोगों से मिलने लगा, उनके केबिन में भी जाने लगा। यह क्रम लगभग तीन महीने तक चला।

जहाज अमेरिका के बन्दरगाह पर लग गया। सब लोग झटपट उतरने की तैयारी करने लगे, यह बच्चा सब की नजर बचा जहाज से उतर गया और वहाँ की भीड़ में मिल कर २-३ मील तक भाग खड़ा हुआ। उसे अचानक कुछ पगड़ी धारी पंजाबी दिखे। वे पंजाबी में ही बातें कर रहे थे। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा और तुरंत उनसे मिला। वे इसकी पूरी बात सुन उसे अपने घर ले आए। उस मुहल्ले में अनेक पंजाबी थे, उसे तो ऐसा लगा कि वह अमेरिका नहीं पंजाब में ही है। बच्चे को पता चला कि वे सब पंजाब से ही हैं और कई पीढ़ियों से हैं, खेती करते हैं। वहाँ के सब लोगों ने उसकी बहुत आवभगत की, उसे अच्छे से रखा और उसे प्रस्ताव दिया कि अब वह उन्हीं के साथ वहीं रह जाये। लेकिन बच्चा

तैयार नहीं हुआ। वह तो वहाँ श्रीमान फोर्ड से मिलने आया था। जिस प्रकार यम ने नचिकेता को अनेक प्रलोभन दिये थे ठीक वैसे ही बिरादरी वालों ने बच्चे को अनेक प्रलोभन दिये – तुम्हें घर देंगे, खेत देंगे, खेती सीखा देंगे, स्कूल-कॉलेज में आगे पढ़ा देंगे, और तो और एक सुंदर अच्छी सी लड़की से तुम्हारी शादी भी करा देंगे – तुम यहीं रह जाओ। लेकिन इन सब प्रलोभनों को दरकिनार कर बच्चा अपने निश्चय पर अडिग रहा। एक निर्णय लेना और फिर उस पर अडिग रहना साधारण जज्बा नहीं है, जो उस बच्चे में था। आखिरकार उन्होंने भारी दिल से उसे विदा किया।

अब वह फोर्ड के कारखाने के दरवाजे पर खड़ा था। वहाँ घुसने में उसे कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। लेकिन फिर, एक के बाद एक कई दरवाजे मिलते गए और उसकी मुसीबत बढ़ती गई। आखिरकार वह एक अफसर के सम्मुख खड़ा था। उसने उसकी पूरी बात सुनी और बोला कि वह उसके हिम्मत की कद्र करता है और उसकी ख़्वाहिश पूरी की जाएगी। उसने उसे कंपनी के अतिथिगृह में भेज दिया। थका हुआ बच्चा गहरी नींद में सो गया। कर्मचारी उसकी खिदमत में खड़े थे। दूसरे दिन उसे कारखाने के उस भाग में ले गए जहां मोटर गाड़ी के कलपुर्जे बनते थे। एक-एक चीज उसे ठीक से दिखाई और समझाई गई। उसे भी बड़ा अच्छा लग रहा था। लेकिन इसी प्रकार एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे कारखाने में जाते-जाते कई दिन बीत गए। फिर दिन सप्ताह में बदलने लगे। वह अब बेचैन हो उठा। बार-बार पूछने लगा उसकी मुलाक़ात श्रीमान फोर्ड से कब होगी। आखिरकार वह एक ऐसी जगह पहुंचा, जहां उसने पूरी चमचमाती, चलने को तैयार मोटर गाड़ी देखी। वह बहुत खुश हुआ, लेकिन फिर उसने वही सवाल किया 'श्रीमान फोर्ड कहाँ हैं'?

बच्चा अब फिर एक और नये उच्चाधिकारी के सामने बैठा था। उसे बताया गया कि फोर्ड से उसकी मुलाक़ात कल होनी तय है। नियत समय पर वह तैयार था। जब वह फोर्ड के कमरे में पहुंचा तो उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह इस धरा पर है या स्वर्ग में। उस सुसज्जित, विशालकाय, कमरे में फोर्ड ने खुद खड़े होकर उस लड़के का स्वागत किया। फोर्ड ने बहुत ही विनम्र भाषा में उससे भारत की भाषा-संस्कृति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, प्रदेश, लोग, नदी-नाले-पहाड़ और तो और गांधी के बाबत भी प्रश्न किये। उनकी यह बात, जिसमें फोर्ड ने भारत में अपनी दिलचस्पी दिखाई लगभग ४-५ घंटे चली। बच्चे ने भी अपनी जानकारी के अनुसार सब प्रश्नों के उत्तर दिये। अब वह बच्चा अपने उद्देश्य पर आया, 'मैं कई दिनों से आपके कारखानों में घूम रहा हूँ। अनेक लोगों को देखा, उनसे मिला। वे सब साधारण वेश-भूषा में थे, अनेक के कपड़ों पर तो तेल वगैरह के दाग भी थे। मैंने आपको वहाँ कहीं नहीं देखा। आप तो इस कमरे में बेशकीमती स्वच्छ चमचमाते सूट में बैठे हैं। तब आप मोटर गाड़ी कब बनाते हैं?" श्रीमान फोर्ड हंस पड़े, "मैंने एक जनरल मैनेजर नियुक्त कर रखा है। पूरा काम वही करता है"। बच्चे के सिर पर तो जैसे घड़ों पानी फिर गया, लगभग चीखते हुए कहा, "मुझे तो बताया गया कि आप ही गाड़ी बनाते हैं। इसीलिए मैं आप से मिलना चाहता था, लेकिन अगर यह काम आप नहीं आपका मैनेजर करता है तब मैं आप से नहीं आपके मैनेजर से मिलना चाहता हूँ। कृपया मुझे आप उनके पास भिजवायें या उन्हें यहाँ बुलवायें"। बच्चे को अपना ध्येय स्पष्ट था कि उसे मोटर गाड़ी बनाने वाले से मिलना है। अपने ध्येय की स्पष्टता ही हमें सफल बनती है। फोर्ड का नाम तो वह इसीलिए ले रहा

था क्योंकि उसे उस मोटर गाड़ी के निर्माता के रूप में फोर्ड का ही नाम बताया गया था। अपने लक्ष्य को समझने में उसने जरा भी भूल नहीं की और उसी की लगन लगाए रखा।

श्रीमान फोर्ड ने एक ठहाका लगाया, "वह मैनेजर तो यहीं है, आप के सामने, हर कहीं है, हर जगह है, हर समय है, सर्व शक्तिमान, परम ब्रह्म ईश्वर। वही इस ब्रह्मांड का शिल्पकार, निर्माता और रचनाकार है। यह वही है जो मेरे कारखाने को चलाता और गाड़ियाँ बनाता है। उसके हाथ अपना पूरा काम सौंप में निश्चिन्त हूँ।"

बच्चा मंत्र मुग्ध सा फोर्ड की बातें सुनता रहा। उसकी बातें उसके कानों में गूंजने लगीं। उसका जीवन बदल गया। उसे एक नयी रह मिल गई।

सत्रह वर्ष की आयु से, मैंने भी इसी जनरल मैनेजर की सेवाएं ली हैं जो मेरे पूरे जीवन के संचालन के लिए जिम्मेदार हैं। इस गंभीर झटके ने मुझे जगाया और मैंने पाया कि सूरज आसमान में काफी ऊंचाई तक पहुँच चुका है।

('सुरेन्द्र नाथ जौहर – जीवनी, लेखन और विचार' से अनुदित)

जीना अधिकाधिक जीना जीवन का अक्षुण्ण कर्म

-इन्द्रसेन (अनुवाद- लीलावती)

श्रीअरविन्द से एक बार किसी ने पूछा, 'जीवन क्या है?' श्रीअरविन्द ने उत्तर में कहा, 'आनन्द-भाव।'

निःस्सन्देह आनन्दभाव ही जीवन का सार है। यह जीवन को उत्तरोत्तर आधिकाधिक आनन्दानुभूति प्रदान करता है। यह एक साहसिक प्रयास है आशा से परिपूर्ण। इसमें विस्तार है, उपयोगिता है, यह आश्चर्यजनक रुप में सांक्रामिक है। यह आस-पास के वातावरण को, वस्तुतः, सब कुछ को आनन्दमय बना देता है। आनन्दभाव और अधिक आनन्द उत्पन्न करता है, फलस्वरुप जीवन अधिकाधिक विकास को प्राप्त होता है।

आनन्द के बिना जीवन सिकुड़ कर छोटा हो जाता है, धूमिल पड़ जाता है और फिर बुझने भी लगता है।

एक बच्चा कितना आनन्द अनुभव करता है और युवक के मन में जीने की कितनी आकांक्षा होती है। इसके लिए समस्त जीवन ही एक आनन्दमय खेल है, एक साहसिक प्रयास है। किन्तु खेद की बात यह है कि आनन्द और आशा के ये भाव अधिक टिकते नहीं। एक समय ऐसा आता है जब मनुष्य अपने पुराने और पाये को बार बार याद करता है, मानो अब उसे और न कुछ करना है न पाना है। वह नीरस मशीनी जीवन जीने लगता है। एडिसन के दादा के बारे में कहा जाता है कि वह इतने दिन जिया कि अपने जीवन से ऊब उठा। कितनी मनोरंजक बात है कि वह अपने जीवन से ऊब उठा।

किन्तु जीवन अपने आपमें आनन्दमय है, अन्यथा वह कैसे अपना अस्तित्व बनाये रखता। श्रीअरविन्द ने अपने सामान्य और यौगिक अनुभव के आधार पर तथा तर्क देकर भी इस बात को सिद्ध किया है। वे इसे 'जीवन का आनन्द' दिव्य आनन्द कहते हैं। निस्सन्देह वस्तुओं के मूल में आनन्द और उल्लास होना ही चाहिये। हम सभी जीना चाहते हैं, अधिकाधिक जीना चाहते हैं। प्रत्येक जीव, कीड़ा-मकौड़ा भी जीना चाहता है।

किन्तु जीने के आनन्द में उतार-चढ़ाव भी आता रहता है। ऐसा क्यों?

जीने के अपने स्तर होते हैं, जीवन कई स्तरों पर जिया जा सकता है

जीने का आनन्द होता है एक बच्चे और युवक का आनन्द, यह सुन्दर है, किन्तु यह स्थायी नहीं होता।

जब तक यह रहता है, इसमें बड़ा सुख मिलता है। इसके बाद का जीया जीवन जो कि अभ्यासवश तथा यन्त्रवत् जीया जाता है उसमें भी एक आनन्द होता है। किन्तु यह अधूरा होता है, यह जीवन को पोषित नहीं कर सकता।

जीने का एक अन्य स्तर भी है जहाँ आनन्द एक स्वाभाविक वस्तु बन जाती है। ''जीवन क्या है?' का श्रीअरविन्द का उत्तर 'आनन्द-भाव' इसी सत्य को प्रकट करता है। वहाँ नीरसता का कोई स्थान नहीं और व्यक्ति जीवन से ऊब भी नहीं सकता, तब भी जब शरीर ढीला भी पड़ जाय।

किन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब व्यक्ति अपने अन्तर की गहराई में, अपनी सत्ता के केन्द्र में निवास करना सीख ले। वहाँ आनन्दभाव स्वभाविक रुप में विद्यमान रहता है, वह किसी बाह्य चलायमान वस्तु पर निर्भर नहीं करता, वह स्वयं ही वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। अन्तरात्मा के लिए अभीप्सा स्वाभाविक है। उसकी संलग्नता पूर्णत्व में है और इसी की उसे खोज है, वैश्व सत्ता की, सर्वोच्च असीम दिव्य सत्ताकी। इसीलिए यह खोज और उपलब्धि असीम है, अनन्त है। यही बात आनन्द के साथ है। जीवन और जीने के लिए उत्साह का भी कोई अन्त नहीं। यही वस्तुतः, शाश्वत युवा-भाव का मर्म है। शारीरिक यौवन सीमित होता है, जब कि आध्यात्मिक यौवन अनवरत तथा अनन्त है। कभी कभी अधिक वय-प्राप्त व्यक्ति, जिन्होंने जीवन में अच्छी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, ऐसा अनुभव करते हैं कि अब उन्हें और कुछ करना-धरना नहीं है और अब उनके जीवन की कोई उपयोगिता भी नहीं रह गई है। सामाजिक रुप से यह शायद सच भी हो। किन्तु समाज और समाज के निर्णय अन्तिम मानदण्ड नहीं हैं। असल में मानदण्ड है परमसत्ता, भगवान, जो सभी वस्तुओं का स्रोत हैं और सभी प्रयासों और वैश्व विकास का लक्ष्य हैं, सच्चा मानदण्ड यही है। सर्वोच्च सत्ता के प्रति सृष्टि का एक ही दायित्व है, अधिकाधिक विकास करना और उनके पूर्णत्व को प्राप्त करता। अतएव हमारा कार्य निरन्तर चलता रहता है, हम यह नहीं कह सकते कि हमारा कार्य पूरा हो गया है या अब और कुछ करने को नहीं है। आनन्दभाव विकास के साथ-साथ चलना है, यही जीवन है, और इसीमें जीने के लिए उत्साह निहित है।

1972 में, माताजी के शरीर छोड़ने से थोड़ा पहले, उन्होंने कुछ युवकों को बुलाया और उनसे कहा, मानो अपना अन्तिम सन्देश देने के लिए, कि उनसे क्या आशा की जाती है और उन्हें क्या करना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा,''मैं वृद्ध नहीं हूँ, न, बिल्कुल भी नहीं, मैं तुम लोगों से कहीं अधिक युवा हूँ, आदि, आदि। चाहे माताजी का यह कथन उनकी समय में न भी आया हो। सामान्य रुप से उनकी आयु अधिक थी, पर वे युवा-भाव से परिपूर्ण थी, अपने शरीर में विजय पाने के अभियान में जुटी थी, साथ ही सर्वोच्च उपलब्धि पाने की आशा रखती थीं। उनके अन्दर उच्च सत्ता का शाश्वत यौवन विद्यमान था और उस यौवन की तुलना में हम सब वृध्द थे, हममें आशा की कमी थी, विजय और आनन्द-भाव प्राप्त करने की इच्छा की भी कमी थी।

अन्तरात्मा में निवास करना ही आनन्द का, विकास का रहस्य है - यही जीने के लिए सतत उत्साह का मर्म है।

पूर्णयोग

-प्रणत

योग के द्वारा हम असत्य से सत्य में, निर्बलता से शक्ति में, दुःख और क्लेश से परम आनन्द में, बंधन से मुक्ति में, मृत्यु से अमरत्व में, अंधकार से प्रकाश में, सम्मिश्रण से शुद्धता में, अपूर्णता से पूर्णता में, आत्मविभाजन से एकत्व में, माया से ईश्वर में आरोहण कर सकते हैं। योग के अन्य सभी उपयोग विशिष्ट और आंशिकताओं के लिए होते हैं, जिन्हें सदा पाने की चेष्ट करना उचित नहीं होता। केवल वही योग पूर्ण है जिसका सक्ष्य भगवान की पूर्णता को प्राप्त करना हो, भागवत परिपूर्णता का साधक ही पूर्णयोगी है।

हमारा उद्येश्य होना चाहिए पूर्ण होना, जैसे कि भगवान अपनी सत्ता और आनन्द में पूर्ण हैं, पवित्र होना, जैसे के वह पवित्र हैं; आनंदमय होना, जैसे कि वह आनंदमय हैं, और जब हम स्वयं पूर्णयोग में 'सिद्ध' हो जायें तब सारी मानव जाति को उसी भागवत परिपूर्णता तक ले आना। इससे कोई हानि नहीं यदि अभी हम अपने उद्देश्य के उपयुक्त न भी हों, बशर्ते कि हम अपने आपको पूरे दिल से इस प्रयत्न में लगा दें और निरंतर उसी प्रयत्न में लगे रहकर और उसी के लिये जीवित रहकर अपने मार्ग में इंच-दो-इंच आगे बढ़ते रहें, यह भी मानव जाति को उस संघर्ष और अधं-प्रकाश में से जिसमें कि अभी वह निवास कर रही है, बाहर निकालकर उस ज्योतिर्मय आनंद में ले जाने में सहायक होगा जो भगवान के द्वारा हमारे लिए अभिप्रेत है। किन्तु हमारी तात्कालिक सफलता चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमारा अटल उद्देश्य होना चाहिए समूची यात्रा पूरी करना, न कि मार्ग के बीच किसी पड़ाव या किसी सदोष विश्रामस्थल में संतोषपूर्वक पड़े रहना।

वह सारा योग जो हमें जगत से दूर ले जाता है, दीव्य तपस्या में एक उच्च किन्तु संकुचित विशिष्ट रुप है। अपने पूर्णत्व में भगवान सब वस्तुओं का आलिंगन करते हैं; हम में भी सब वस्तुओं का आलिंगत करने की क्षमता होनी चाहिए।

सम्पूर्ण अभिव्यक्ति और सम्पूर्ण ज्ञान से परे अपनी सर्वोच्च सत्ता में भगवान परात्पर ब्रह्मा हैं, जहाँ तक जगत का सम्बन्ध है उस दृष्टि से भगवान वह सत्ता हैं जो समस्त विश्व का साक्षित्व करते हुए अथवा उससे विमुख होते हुए उसे अतिक्रम करती है, वह सत्ता है जो विश्व को अपने भीतर धारण करती और उसकी रक्षा करती है तथा जो स्वयं विश्व बनती है। स्वयं भगवान ही यह विश्व हैं ओर इस विश्व में जो कुछ है वह सब वही हैं।

यह विश्व के भीतर और विश्व के रुप में कीड़ा करने वाले सर्वातीत और सर्वोच्च पुरुष भी हैं, विश्व में वह उसके आत्मा और प्रभु के रुप में दृष्टिगोचर होते हैं, विश्व रुप में वह प्रभु के संकल्प की गति या प्रकिया के रुप में तथा संकल्प की उस गति के सारे आंतर और बाह्य परिणामों का रुप धारण करते हुए

दिखाई पड़ते हैं। ब्रह्म की सभी परिस्थितियाँ - जैसे परात्पर, सर्वाधार, विराट्, व्यष्टि रुप आदि दिव्य पुरुष से सृष्ट और धारित होती हैं। वही 'अस्तित्ववान' और अस्तित्व की स्थिति दोनों हैं। अस्तित्व की स्थिति को हम नैव्यर्तिक ब्रह्म कहते हैं और अस्तित्ववान को सव्यर्तिक ब्रह्म। केवल हमारी चेतना की क्रीड़ा के लिए ही उनमें अन्तर है, इसके अतिरिक्त उनमें कोई भेद नहीं है; क्योंकि प्रत्येक नैव्यर्तिक स्थिति किसी प्रकट या गुप्त व्यक्तित्व पर निर्भर होती है और उस व्यक्तित्व को प्रकट कर सकती है जिसे कि वह 'अपने भीतर' धारण करती और छिपाती है, तथा प्रत्येक व्यक्तित्व के साथ एक नैव्यर्तिक स्थिति जुड़ी रहती है और वह व्यक्तित्व उस नैव्यर्तिक स्थिति में निमज्जित हो सकती है। यह करना इसलिए सम्भव है कि व्यक्तित्व और नैव्यर्तिकत्व हमारे परात्पर आत्मा के आत्म-चैतन्य की महज विभिन्न अवस्थायें हैं।

दर्शनशास्त्रों और धर्मों का इस विषिय में विवाद चलता है कि भगवान का कौन सा स्वरुप आद्य है तथा भिन्न-भिन्न योगियों, ऋषियों और सन्तों ने किसी एक या दूसरे दार्शनिक मत या धर्म को पसंद किया है। हमारा काम भगवान के उन स्वरुपों में से किसी के भी विषय में विवाद करना नहीं है, बल्कि उन सब का साक्षात्कार करना और उनके साथ तद्रूप हो जाना है, अन्य सबको छोड़कर किसी एक स्वरुप का अनुसरण करना नहीं, वरन् उन समस्त स्वरुपों में तथा रुपमात्र से परे भगवान का आलिंगन करना है।

महान गुरू के महान शिष्य

डॉ. नीरदवरण

त्रियुगी नारायण

डॉ.नीरदवरण का जन्म 17 नवम्बर 1903 को चिटगाँव के एक बौध्द परिवार में हुआ था जो अब बंगलादेश में है। उनकी माँ चित्तरेखा जी एक सुशिक्षित, बुध्दिमती, दयालु तथा अपने परिवार व पड़ोसियों की एक सम्मानित महिला थीं और उनके पिता थे एक जमींदार और व्यवसायी व्यक्ति।

जब नीरदवरण मात्र 5 वर्ष के थे तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी माँ ने बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ अपने पूरे परिवार का उत्तरदायित्व सँभाला और अपने बच्चों को प्रशिक्षित किया।

नीरदवरण ने सन् 1920 में चिटगांव से मैट्रिक की परीक्षा उच्च अंकों से उत्तीर्ण की और विद्यालयीन शिक्षा विधा नगर कॉलेज से उन्होंने प्रारम्भ की। उन दिनों 1921 में कलकत्ता में असहयोग आन्दोलन चल रहा था जिसमें उन्होंने भाग लिया। इस पर वे गिरफ्तार हुये, तीन महीने की सजा काटी और उसके बाद जेल से मुक्त हुवे।

जेल से मुक्त होने के बाद अग्रिम पढ़ाई हेतु ये कलकत्ता से पुन चिटगांव चले गये और वहाँ उन्होंने इतिहास और पाली भाषा में इंटरमीडियट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् इन्हें अग्रिम अध्ययन हेतु इंग्लैण्ड जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ, लेकिन एकमात्र यही पुत्र होने के कारण इनकी माँ इसके लिये सहमत नहीं थीं। फिर भी इन्होंने वर्षों तक अपने इस स्वप्न को संजोये रखा। कालांतर में इनके भतीजे ने सहायता की और इनकी माँ को समझा-बुझाकर किसी तरह राजी कर लिया।

फलस्वरूप 1924 में नीरदवरण अपनी भतीजी ज्योतिर्मयी के साथ अपनी अग्रिम शिक्षा हेतु लन्दन के लिये जहाज से रवाना हुये और एडिनबरा में उन्होंने मेडिकल की पढ़ाई प्रारम्भ की। कुछ समय पश्चात् पेरिस में इनकी भेंट दिलीप कुमार राय से हुई जो इसके पूर्व श्रीअरविन्द और श्रीमाताजी से पांडिचेरी में मिल चुके थे अतः इस भेंट से उन्होंने वहाँ का पूर्ण विवरण इन्हें सुनाया। इस पर नीरदवरण ने तो कोई दिलचस्पी नहीं ली, पर इनकी भतीजी ज्योतिर्मयी आश्रम के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुई। और यह आकर्षण इतना बढ़ा कि विदेश की शिक्षा समाप्त करने के बाद वह सीधे श्रीअरविन्द आश्रम पांडिचेरी पहुँची और कुछ समय बाद तो आश्रमवासी ही बन गईं। नीरदवरण ने भी अपनी मेडिकल की पढ़ाई पूरी की और सन् 1930 में वे स्वदेश के लिये रवाना हुये। लेकिन इनकी भतीजी ज्योतिर्मयी का आग्रह था कि अपने घर आने से पूर्व वे आश्रम अवश्य जायें। अत: वे जहाज से कोलम्बो होते हुवे, पांडिचेरी में उतरे और सीधे दिलीप कुमार राय से मिले। इनके इस अप्रत्याशित आगमन पर दिलीप कुमार राय को आश्चर्य

हुआ और उन्होंने पूछा :-

"यहाँ तुम किस लिये आये हो?"

"बस यूँ ही इस स्थान को देखने के लिये। मुझमें कोई यौगिक प्रवृति नहीं है।"

"अच्छा, तुम कितने दिन यहाँ रुकोगे।"

"डॉ अथवा तीन दिन। अधिक नहीं। घर में मेरी माँ मेरी प्रतीक्षा कर रही है।"

"क्या तुम श्रीमाताजी का दर्शन करना पसंद करोगे?"

"हाँ, करूंगा, यदि यह संभव हो।"

दूसरे दिन दोपहर 3 बजे के बाद दर्शन का समय तय हुआ। निर्धारित समय पर वे तैयार हुये, दिलीप राय की दी हुई धोती पहनी, थोड़ा ध्यान किया, गुलाब का एक सुंदर फूल लिया और लाइब्रेरी हाउस में जा बैठे। आगे का वर्णन स्यमं नीरोददा के शब्दों में-

मेरा हृदय घबराहट से धक-धक कर रहा था, मानों मैं किसी परीक्षा का सामना करने जा रहा हूँ। थोड़ी ही देर में नलिनी, अमृत और दिलीप के साथ माताजी आयीं। वे कुर्सी पर बैठीं। मैं तो उन्हें देखकर चकित रह गया। ऐसा दृश्य इससे पहले मैंने कभी नहीं देखा था। अपनी मुस्कान बिखेरती हुई वे सुरभित श्री शोभा की देवी थीं। उन्होंने अपनी मुस्कान के बहते झरने और हृदय स्पर्शी दृष्टि से मुझे सराबोर कर दिया। कुछ पल बीतने पर मैंने उन्हें गुलाब का पुष्प अर्पित किया और स्वर्णिम पायल से भूषित उनके श्री चरणों में प्रणाम किया। वे झुकीं और मुझे आशीर्वाद दिया। खड़े होने पर मैंने उनकी उसी मोहक मुस्कान का अनुभव किया मानों किसी जादुई आकाश से चन्द्रमा की शुभ्र किरणें विकीर्ण हो रही हों।

उन्हें बताया गया था कि मैंने चिकित्सा विज्ञान में उपाधि पाई है। अत: श्रीमाँ ने कोमलता से पूछा- "कब जा रहे हो तुम और कहाँ प्रैक्टिस करना चाहते हो मैंने बताया मैं अपने ही नगर में रहूँगा। इस पर उन्होंने सहमति दी और कहा - हाँ , यह ठीक रहेगा।

"इसके बाद मैं स्टेशन गया, ट्रेन में बैठा और पांडिचेरी से विदा ली। तदुपरान्त जो कुछ घटित हुआ वह मेरे लिये सर्वथा अप्रत्यशित था। मैंने एक सुखद आश्चर्य का अनुभव किया। जहाँ कही मैं देखता वही श्रीमाताजी के भास्वर आनन और उनके नयन दिखाई पड़ते। अत्यन्त सम्मोहक एंव आनन्दातिरेकी सौन्दर्य, जहाँ मेरी द्रृष्टि जाती, वहाँ वे सर्वत्र विद्यमान होतीं। मैं रोमांचित हो उठा।

मैं अब अनुभव करता हूँ कि पहली मीटिगं ने ही मेरे भाग्य का निर्धारण कर दिया था, माँ मेरे भीतर प्रवेश कर चुकी थीं और इस तरह आश्रम की सूची में मेरा नाम प्रविष्ट हो चुका था।

उसी वर्ष 1930 के फरवरी दर्शन में डॉक्टर नीरदवरण और उनकी भतीजी ज्योतिर्मयी पुन: पांडिचेरी आये और वहाँ लगभग एक महीना रहे।

लौटने का समय था। कुछ मित्रों की इच्छा थी कि वे यहीं रहें क्योंकि उन पर श्रीमाँ की बड़ी कृपा है और सहज ही यहाँ रहने की उन्हें अनुमति भी मिल सकती है। तब अपने मित्रों की सलाह पर अपने जीवन की भावी योजना का उल्लेख करते हुये उन्होंने इस आशय का पत्र लिखा कि योग और अध्यात्म का जीवन जीने के लिये वे कतई तैयार नहीं हैं अपितु बाहर रह कर कर्म योग करना उन्हें अधिक पंसद है। यह विचित्र बात थी कि कर्मयोग शब्द का प्रयोग उन्होंने अर्थ को समझे बिना ही कर दिया था।

दूसरे ही दिन श्रीअरविन्द का उत्तर मिला कि उसका निर्णय सही है। बाहर में कर्मयोग का अभ्यास करना आध्यात्मिक जीवन के लिये अच्छी तैयारी होगी। उनके मित्रों को यह उत्तर देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक नये आगन्तुक कि ओर से इतना अच्छा पत्र मिला। पत्र के भाव सौहार्द्रपूर्ण थे।

डॉक्टर नीरदवरण को इधर रंगून में सहज ही एक शासकीय नौकरी मिल गई लेकिन पुलिस की कृपा द्रृष्टि और असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण दो वर्ष बाद वह समाप्त भी हो गई। फिर वे कलकत्ता आये और नौकरी की तलाश में दर-दर ठोकरें खाई लेकिन अन्ततोगत्वा निराश होकर अपने गृहनगर चटगांव में ही "कर्मयोग" के लिये वे विवश हुये।

अब तक इनकी भतीजी ज्योतिर्मयी आश्रम की सदस्या बन चुकी थीं। उनकी ओर से इस बीच नीरदवरण को पत्र और श्रीमाँ के आशीर्वाद बराबर मिलते रहे। कई बार वे निम्न शक्तियों की गिरफ्त में भी फँसे लेकिन श्रीमाँ के आशीर्वाद से इनकी रक्षा होती रही।

इसके बाद फिर से वे किसी भँवर जाल में फँसने ही वाले थे कि अचानक उनकी भतीजी का पत्र मिला - तुम अपना मूल्यवान समय व्यर्थ ही गवाँ रहे हो। कब तक माताजी और श्रीअरविन्द तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहेंगे।

इस पत्र के पाते ही नीरोददा की अन्तरात्मा जाग उठी। "नमक ने अपना स्वाद छोड़ दिया"। उन्होंने दर्शन की अनुमति के लिये तुरन्त माताजी को पत्र लिखा, और अनुमति प्राप्त होते ही अत्यन्त गुप्त रीति से अपनी माँ को बताये बिना ही घर से निकल पड़े और 15 फरवरी 1933 को जा पहुँचे श्रीअरविन्द आश्रम पांडिचेरी ।

नीरोददा अपने साथ भेंटस्वरूप श्रीअरविन्द के लिये एक रेशमी धोती और श्रीमाँ के लिये इत्र लाये थे। लेकिन अबकी बार श्रीमाँ बिल्कुल गम्भीर थीं, क्योंकि श्रीमाँ ने अपने पूर्व दर्शनों में इन्हें जो ज्योति प्रदान की थी, उसे इन्होंने गवाँ दी थी।

फरवरी दर्शन के पश्चात् नीरोद दा ने आश्रम में स्थायी रूप से रहने के लिये अनुमति चाही , इस पर श्रीअरविन्द का उत्तर मिला हमेशा के लिये रहने के विषय में बाद में समय सीमा निश्चत करेंगे और देखेंगे – अभी अगस्त तक रहो।

इसके उपरान्त नीरोद दा बड़ी लगन व परिश्रम के साथ आश्रम के कार्यों में जुट गये। शुरू-शुरू में उन्हें बिल्डिंग डिपार्टमेण्ट का काम मिला और इस तरह वे आश्रम की मुख्यधारा में आ गये। कुछ समय तक इन्होंने आश्रम गेट की डयूटी की और हाउस पेंटिंग डिपार्टमेण्ट का काम भी सँभाला। इसके बाद काठगोदाम का स्थान रिक्त होने पर वहाँ का जिम्मेदार से भरा हुआ काम इन्हें मिला। तब तक कार्य को इन्होंने साधना के रूप में ग्रहण नहीं किया था, अपितु उनके भीतर औरों की तरह एक बड़ा साहित्यकार और मनीषी बनने की एक महत्वाकांक्षा पनप रही थी।

अस्तु एक दिन माताजी को अपने कार्य का दैनिक प्रतिवेदन भेजने के साथ उन्होंने लिखा – क्या चालू कार्यक्रम में अध्ययन का कार्य किया जा सकता है इस पर श्रीअरविन्द का उत्तर आया - तुम्हारा क्या कार्य है, यह मैं नहीं जानता । इस उत्तर के पाते ही उन्हें एक मानसिक झटका लगा, उनकी अन्तरात्मा कराह उठी। यदि स्वयं हमारे गुरू को हमारे काम का पता नहीं, तब भला यहाँ उनके रहने का प्रयोजन ही क्या नीरोद दा एकाएक सचेत हो गये और उनके अंतर में एक आग प्रज्ज्वलित हो उठी, इससे उनमें परिवर्तन हुआ और कालान्तर में वे एक कर्मयोगी के रूप में पुष्पित हुये ।

एक समय जब ये काठगोदाम में किसी निरीक्षण में व्यस्त थे तब सहसा लकड़ी का एक बड़ा बल्ला इनके अँगूठे पर गिरा जिससे इन्हें असह्य पीड़ा हुई और अँगूठा एकदम काला हो गया । इस पर माताजी ने तुरन्त डॉक्टर को भेजा और इन्हें आराम करने के लिये कहा गया किन्तु ये जल्दी ही पुन: अपने कार्य में जाने लगे और यह अनुभव किया कि यदि कोई भी कार्य सही मनोवृत्ति से किया जाए तो उसमें आनन्द आता है।

एक बार माताजी ने इनसे इनकी 'अभीप्सा' के विषय में जानकारी चाही तो इन्होंने श्रीमाताजी से 'अनन्द' की माँग की। इस उसी अपरान्ह को जब ये अपने कार्य में लगे हुये थे एकाएक आनन्द की एक धारा इनके सिर के ऊपर प्रवाहित हो उठी, वे इस आनन्दातिरेक से अविभूत हो उठे और उसे सँभालना इनके लिये मुश्किल हो गया।

एक समय की बात है काठगोदाम से नीरोद दा ने श्रीअरविन्द को चिट्ठी लिखी कि 20000 रुपये खर्च कर मेरी डॉक्टर विद्या महज बढ़ईगीरी के निरीक्षण में लगाये जाने का क्या अर्थ रखती है? श्रीअरविन्द ने उन्हें लिखा काठ के गोदाम ने तुम्हें महान प्रगतिशील बनाया है और काठगोदाम की भी तुमने महान प्रगति की है।

इस तरह कई जगह पापड़ बेलने के पश्चात् नीरोद दा को सन् 1935 में काठगोदाम की 'गद्दी' से उठाकर डॉक्टर की सीट पर 'सिंहासनारूढ़' किया गया। वे आश्रम के डॉक्टर बन गये और लोगों की दृष्टि में अब एक सही व्यक्ति अपने सही स्थान पर आ गया। और श्रीमाताजी और श्रीअरविन्द से चिकित्सा विज्ञान और स्वास्थ्य विषयक मार्गदर्शक के आधार पर डॉ. नीरोद दा ने अपनी नई सेवायें प्रारम्भ कीं। गुरु

के निर्देशानुसार चाहे कोई साधक हो या मजदूर इनकी दृष्टि में सभी "मक्खन सा मृदु, चाशनी के समान शामक, शर्करा की भाँति मीठा और मुरब्बे की तरह आनन्दायक होना चाहिये।" श्रीमाँ की पाठशाला में उन्होंने यह भी सीखा कि "जीवाणु रोग नहीं करते और न दवाइयाँ इन्हें निरामय करतीं बल्कि डॉक्टर का व्यक्तित्व विशेष महत्व रखता है। एक उच्च दिव्य शक्ति डॉक्टर को ही माध्यम बनाती है और दवाइयाँ तो गौण वस्तुयें हैं।"

इस काल में नीरोद दा और श्रीअरविन्द के बीच हजारों पत्रों का आदान-प्रदान हुआ। यह पत्र व्यवहार 1933 से चालू हुआ जो नवम्बर 1938 तल अनवरत रूप से चालू रहा। इतिहास में पत्राचार व इस तरह के संबंध की मिसाल अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। यह पत्र व्यवहार पारस्परिक हास्य, व्यंग ,विनोद एंव नोंक-झोंक से सराबोर है और यह वांगमय दो मोटी जिल्दों में समाहित है।

बंगाली में कवितायें लिखना और उन्हें सुधार के लिये श्रीअरविन्द के पास भेजना तो नीरोद दा ने 1934 से ही शुरू कर दिया था। इसके बाद शीघ्र ही उनका अंग्रेजी में भी काव्य लेखन प्रारम्भ हुआ। 1935 की किसी शुभ घड़ी में श्रीअरविन्द ने उन्हें लिखा था – 'मुझे तुम्हारी कवितायें बेहद पसंद हैं।

इसके बाद आयी 23 नवम्बर 1938 की वह काली रात जबकि श्रीअरविन्द एक भयानक दुर्घटना से भी गुजरे और उनकी दाहिनी जाँघ की हड्डी टूट गई।

इसी परिप्रेक्ष्य में गुरु के उस पावन कक्ष में नीरोद दा का प्रवेश हुआ ।श्रीअरविन्द ने बाद में कहा- "नीरद मेरे लिये डॉक्टर नहीं है, यह मेरी सेवा लिये आया है।"

श्रीअरविन्द के कक्ष में नीरोद दा को भागवात सान्निध्य प्राप्त हुआ और वहाँ एक असाधारण पेशेंट की सेवा करने का उन्हें सौभाग्य मिला। डॉक्टरी परिचर्चा के साथ-साथ श्रीअरविन्द को समाचार पत्र पढ़कर सुनाना, पैरों में क्रीम मलना, मालिश, ठण्डी-गरम सेंक, पसीना पोंछना, चद्दर बदलना आदि अनेकानेक कार्य उनके जिम्मे थे। दो महीने बाद श्रीअरविन्द के पैर का प्लास्तर निकाला गया, तब उनके शिव के जटाजूट की तरह उलझे बालों को ठीक करना और पूरे शरीर में स्पांज करना आवश्यक हो गया। कालान्तर में यही झड़े हुये उनके केश और कटे हुये नाखून देश-विदेश में स्थापित रेलिक्स सेंटरों के काम आये। प्लास्टर खुलने के बाद टेहुने को मोड़ने का अभ्यास, शरीर के अंगों का संचालन, स्नान, आवश्यक फर्नीचर की व्यवस्था, उनकी पालिश, श्रीअरविन्द को चलाने का अभ्यास, पंखा झलने आदि के विभिन्न काम इस बीच चलते रहे।

सन् 1945 से श्रीअरविन्द की दृष्टि कमजोर होने लगी और माताजी ने नीरोददा को उनके लिखने-पढ़ने का पूरा काम भी सँभालने को दिया। श्रीअरविन्द ने 1941 से पत्राचार का काम बन्द कर अपना पूरा ध्यान सावित्री की ओर आकृष्ट किया, उसकी उन्होंने पुनरावृत्ति की, जिनमें अनेक संशोधन परिवर्तन हुये और इस तरह एक बहुत बड़ा भगीरथ कार्य सम्पन्न हुआ और इस सम्पूर्ण लेखन कार्य के माध्यम बनें हमारे नीरोद दा।

जब देहत्याग का अवसर आया तब श्रीअरविन्द इन पर टकटकी लगाकर देखते हुये अपनी असीम करुणा की वर्षा करते रहे और इनके माथे में अपना हाथ रखा। मानों इनकी सेवाओं के लिये वे कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे हों।

नीरोद दा लिखते हैं कि शरीर त्याग के 10 मिनट पूर्व उन्होंने मेरा नाम लेकर पुकारा, समय पूछा और कहा – 'नीरद मुझे पानी पिलाओ। 'यह उनका अंतिम विवेचित कृत्य था। उनके वे अंतिम शब्द आज भी मेरे कानों में बज रहे हैं और मेरी आत्मा में उत्कीर्ण हैं।"

श्रीअरविन्द ने 5 दिसम्बर को अपना पार्थिव शरीर छोड़ दिया। इसके बाद 12 दिसम्बर 1950 को श्रीमाताजी ने नीरोद दा की आँखों में देखा और कहा – "कुछ भी बदला नहीं है। अभीप्सा करो, वे तुम्हारी सहायता करेंगे जैसा हमेशा करते थे। तुम श्रीअरविन्द से सब कुछ प्राप्त करोगे।"

कुछ दिन बाद श्रीमाताजी ने उनसे कहा – "मैं देखती हूँ श्रीअरविन्द हमेशा तुम्हारे साथ व्यस्त रहते हैं।"

श्रीमाताजी ने 'नीरोददा द्वारा लिखी हुई पुस्तक "मैं यहाँ हूँ" को सभी साधकों में वितरित किया तथा उन्हें 'समाधि' की व्यवस्था का चार्ज देते हुये पहले की भाँति श्रीअरविन्द के कमरे में ही सोने की अपनी कृपापूर्ण अनुमति इन्हें प्रदान की।

जब श्रीअरविन्द इंटरनेशनल एजुकेशन सेंटर अस्तित्व में आया तब नीरोद दा ने उसकी उच्च कक्षाओं में माताजी की अनुमति से इंगलिश, फ्रेंच और बंगाली भाषा पढ़ाना शुरू किया तथा वर्षों तक उन्होंने विद्यार्थियों के समक्ष श्रीअरविन्द जीवन विषयक अनेक वार्तायें भी दीं।

टेनिस और फुटबल के खेलों में उनकी विशेष रुचि थी। वे आश्रम से स्पोर्ट ग्राउण्ड तक नित्य साइकल से जाया करते थे, वहाँ घूमने, ताजी हवा लेते और प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द लेते। इसी तरह वे अनिवार्य रूप से प्रति सोमवार को प्ले ग्राउण्ड में व्यायाम करते और उस दिन तथा सभी दर्शन दिवसों के मार्च पास्ट में नियमित रूप से भाग लेते रहे।

नवम्बर 1970में नीरोद दा ने 'श्रीअरविन्द के साथ बाहर वर्ष' नामक पुस्तक लिखने की अनुमति माँगी, इस पर श्रीमाताजी ने उन्हें सहर्ष अपनी अनुमति और आशीर्वाद ही नहीं प्रदान किया बल्कि लिखने के समय नित्य वे बड़ी रूचि के साथ इसे सुना भी करती थी। यह एक ऐसा आलेख है जिसमें 1938 से 1950 तक श्रीअरविन्द के जीवन का यथा तथ्य वर्णन है। द्वितीय विश्व युद्ध इसी समय लड़ा गया। अपने एकान्त कक्ष में बैठे हुये श्रीअरविन्द किस तरह विश्व की शक्तियों का संचालन कर रहे थे और अपनी योगशक्ति द्वारा माताजी का यह युध्द लड़ रहे थे, इसकी झलक इस ग्रंथ में देखने को मिलती है। नये युग के सृजन का प्रतीक सावित्री महाकाव्य का अंतिम लेखन कार्य भी इसी काल में हुआ। इस तरह इस काल में होने वाली महान घटनाओं का ऐतिहासिक वृत्तान्त इस पुस्तक में समाया हुआ है। इनके पत्राचार की दो मोटी

जिल्दें मधुर हास्य, व्यंग और विनोद के सम्पुट के साथ योग, अध्यात्म और ज्ञान-विज्ञान से भरी हुई हैं। नीरोद दा उच्चकोटी के एक लेखक और कवि थे।

हिन्दी में श्रीअरविन्दायन, श्रीमाँ की जीवनगाथा, माताजी के स्मरणीय सम्पर्क, मृणालिनी देवी और असाधारण बालिका इनकी अन्य कृतियाँ हैं तथा इंगलिश में Sri Aurobindo for all Ages, Talks with Sri Aurobindo Vole-I & II, Sri Aurobindo's Humour, Memorable Contacts with the Mother, Correspondence with Sri Aurobindo, Mrinalini Devi, Fifty Poems , The Mother: Sweetness and Light आदि पुस्तकें हैं।

1937 के आसपास आश्रम के ट्रस्टी श्री धुमान भाई के आग्रह पर नीरोद दा द्वारा पढ़ी हुई सम्पूर्ण सावित्री रिकार्डेड की गई। यह कार्य 1990 तक पूरा हुआ और इसके कुल 35 ऑडियो कैसेट तैयार किये गये।

नीरोद दा श्रीअरविन्द आश्रम तथा ओरोविल के बीच एक सेतु माने जाते थे। उनके माध्यम से अगस्त 1999 में सावित्री भवन का शिलान्यास हुआ तथा ओरोविल तथा सावित्री भवन में उनकी उनके वार्तायें हुई।

102 वर्ष के अपने सुनहरे जीवन को बिताकर नीरोद दा ने 17 जून 2006 को अपनी इस काया का संवरण किया। शतायु होने पर भी वे हमेशा एक शिशु जैसे सरल और सहज बने रहे और सर्वत्र अपनी मधुर मुस्कान बिखेरते रहे। लोगों के प्रति उनका व्यवहार बहुत ही सुनम्य और आत्मीय रहा। वे सबसे प्रेम के साथ मिलते, उन्हें धीरज बँधाते, उत्साहित करते और साधना संबंधी मार्गदर्शन करते। अपने इसी सद्व्यवहार व गुणों के कारण वे सबके लिये हमेशा सुखद् बने रहे।

नीरोद दा परम भाग्यशाली थे उन्होंने अपने सुनहरे दिन श्रीअरविन्द और श्रीमाताजी के अतिमानसिक सूर्य के प्रकाश के साथ बिताये। उनका जीवन सेवा और कर्म का जीवन था। सावित्री लेखन में उन्होंने अपनी भूमिका गणपति के रूप में अदा की। चम्पककाल जी तो उन्हें हमेशा अर्जुन कहकर सम्बोधित करते थे। महान गुरू के ऐसे महान शिष्य नीरोददा को हमारे शतशः नमन।

माँ के कार्य का स्वरूप

तूने मेरी मूक और आशान्वित आत्मा को परियों के भू-दृश्यों की समस्त भाव्यता दिखला दी है: उत्सव में लीन वृक्ष तथा एकाकी रहे आकाश की ओर उठते प्रतीत होते हैं।

लेकिन तूने मुझसे मेरी नियति के बारे में कोई बात नहीं की। क्या उसे मुझसे यूँ छिपा रहना चाहिये?...

फिर से एक बार में हर जगह चेरी के वृक्ष देखती हूँ, तूने इन फूलों में एक जादुई शक्ति रखी है : ऐसा लगता है कि वे तेरी एकमात्र 'उपस्थिति' के बारे में बातें करते हैं; वे अपने साथ भगवान् की मुस्कान लेकर आते हैं।

मेरा शरीर विश्राम में है और मेरी आत्मा प्रकाश में खिल रही है: तूने फूलों से लदे इन वृक्षों में किस प्रकार का सम्मोहन रख दिया है?

हे जापान, यह उत्सव की तेरी साज-सज्जा है, तेरी सद्भावना की अभिव्यक्ति है, तेरी शुद्धतम भेंट है, तेरी निष्ठा की प्रतिज्ञा है; यह तेरे कहने का तरीका है कि तू व्योम को प्रतिबिम्बित कर रहा है।

और यह एक भव्य देश है, ऊँचे ऊँचे पहाड़ों का देश जो देवदारु- वृक्षों से ढका हुआ है और जहाँ की वादियाँ अच्छी तरह जुती हुई हैं; और यह चीनी आदमी, जो छोटे-छोटे गुलाबी गुलाब लाता है, क्या वे निकटस्थ भविष्य की प्रतिज्ञा हैं।

७ अप्रैल १९१७

एक गहरी एकाग्रता ने मुझे पकड़ लिया और मैंने देखा कि मैं एक चेरी के फूल के साथ अपने आपको तदात्म कर रही थी और उसके द्वारा चेरी के सभी फूलों के साथ, और जैसे-जैसे मैं चेतना की गहराई में एक नीलाभ शक्ति-धारा के पीछे-पीछे उतरती गयी, मैं अपने-आप अचानक चेरी का यह वृक्ष बन गयी जो पूजा के फूलों से लदी हुई अपनी असंख्य शाखाओं को अनेक बाहुओं की तरह आकाश की ओर फैला रहा था। तब मैंने स्पष्ट रूप में यह वाक्य सुना

" तूने अपने आपको चेरी के पेड़ों की आत्मा के साथ एक कर लिया है ताकि तू भली-भाँति देख सके कि स्वयं भगवान् ही स्वर्ग के प्रति इस पुष्पमय प्रार्थना की भेंट चढ़ा रहे हैं।"

जब मैंने यह लिखा तो सब कुछ मिट गया; लेकिन अब उस चेरी के पेड़ का रक्त मेरी रगों में बह रहा है और उसके साथ बह रही है अतुलनीय शक्ति और शान्ति। मनुष्य-शरीर और वृक्ष-शरीर में क्या

अन्तर है? सचमुच कोई अन्तर नहीं जो चेतना इन दोनों को अनुप्राणित करती है वह अभिन्न रूप से एक ही है।

तब चेरी के वृक्ष ने मेरे कानों में फुसफुसा कर कहा : " वसन्त के रोगों का इलाज चेरी के फूलों में है। "

माँ सर्जन चेतना हैं; वे जहाँ भी होती हैं, उन्हें जहाँ जाने को पुकारा जाता है, उनकी उपस्थिति मात्र सर्जन की ओर अग्रसर होती है तथा समय और स्थान की आवश्यकता के अनुसार एक नये संसार का एवं सत्ता और चेतना के एक नये आयाम का सृजन करती है और वे एक पूरे संसार की सृष्टि करती हैं, और उनकी सृष्टि स्थायी होती है क्योंकि वह मानव के विकास में एक नवीन निष्पादन होता है। इसे संसिद्ध करने के लिए सुव्यवस्थित, सशक्त, सुनियोजित प्राणिक जगत् को जिसके विषय में हम कह रहे थे सहारा देने और अभिव्यक्त करने के लिए एक सक्षम शरीर की आवश्यकता है स्वर्णिम ज्योति को पाँवों में आना होगा। यहाँ पर वे यही कार्य कर रही थी और इसी के लिए उन्होंने आश्रम का निर्माण किया। तुम सब जानते हो कि माँ शरीर और इन्द्रियों को, स्वर्णिम ज्योति को ग्रहण करने के लिए तैयार करने के हेतु शारीरिक प्रशिक्षण पर विशेष बल देती थीं। वे सदैव कहती थीं कि शारीरिक शिक्षा हमें नवीन चेतना, नवीन ज्योति के लिए आधार देती है। हमें एक बलवान् शरीर, एक सुन्दर शरीर, एक सहिष्णु शरीर चाहिये; क्योंकि नयी ज्योति शक्तिशाली है, वह केवल ज्योति नहीं है, वह एक शक्ति है; व्यक्ति को उसे सहन करने और उसका आदेश मानने के लिए तैयार होना होगा। वास्तव में, वे यहाँ इस दिव्य ज्योति को एक आकार एक ठोस और भौतिक रूप, एक पार्थिव शरीर देने आयी थीं।

सुन्दर शरीर अपने में एक अन्त, एक परिपूर्ति नहीं है; उसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को एक सुन्दर प्राण चाहिये। केवल यही नहीं, शरीर और प्राण में परिपूर्णता के लिए व्यक्ति को एक सुन्दर मन उपलब्ध होना चाहिये। माँ ने हमारे लिए जिस शारीरिक शिक्षा का प्रबन्ध किया है वह हमें सुन्दर शरीर के लिए तैयार करने के लिए है। यह विद्यालय जो उन्होंने खड़ा किया है मन को परिष्कृत करने के लिए है। मन के परिष्कार का अर्थ यह नहीं कि उसमें विविध विषयों के बारे में सूचना मात्र दी जाये, पुस्तकों का अध्ययन किया जाये; उसका अर्थ मन का मन के उपादान का पवित्रीकरण, परिष्करण तथा ज्योति की खोज और उसे पहचानने के लिए चेतना का एक उन्नयन भी है।

मैंने कहा है कि तुम्हें नवीन ज्योति को पहले सिर के माध्यम से ग्रहण करना है, किन्तु हृदय के माध्यम से भी करना है, और तब तुम्हारी प्रगतिशील प्राणिक ऊर्जा के माध्यम से तुम्हें ज्योति को न केवल देखना और पहचानना है, बल्कि उससे प्रेम भी करना है, उसके प्रति निष्ठावान् होना है।

और यहाँ आता है माँ का हमारे लिए केन्द्रीय कार्य, उनका विशेष उपहार, उनकी कृपा । जब तुम किसी वस्तु से प्यार करते हो, कहा जाता है तुम हृदय के माध्यम से प्रेम करते हो, किन्तु प्रेम विभिन्न प्रकार का होता है और हृदय के अन्दर भी एक हृदय है। सच्चा प्रेम, प्रेम जो दिव्य है, वह इस आन्तरिक हृदय में

है, जो तुम्हारी अन्तरात्मा है, तुम्हारे अन्दर की यथार्थ सत्ता या व्यक्ति है; और अन्तरात्मा का बाहर आना, सामने आना, यहाँ पर माँ की विशेष कृपा है, तुम सबको, तुममें से प्रत्येक को उनका यह उपहार प्राप्त है। उन्होंने तुम्हें तुम्हारी अन्तरात्मा उपलब्ध करायी है।

मैंने बहुधा कहा है कि हममें से प्रत्येक जो यहाँ पर है उसके लिए यह एक विशेषाधिकार है, तुममें से प्रत्येक के लिए, इस सत्ता को वहन करना, इस आन्तरिक सत्ता को, इस अन्तरंग व्यक्ति को, दिव्य शिशु को जो तुम हो, वहन करना सम्भव है। यही है जो तुम्हारे दिव्य व्यक्तित्व का निर्माण कर रहा है, यही है जो तुम्हें अन्त में एक सुन्दर मन एक सुन्दर प्राण, एक सुन्दर शरीर - वह सब जिसकी तुम्हें अपने जीवन में आवश्यकता है, वह सब जो तुम्हें यहाँ इस संसार में जो कुछ भी पूर्ण और अनिन्द्य है— प्रदान करेगा।

तुममें से बहुतेरों को याद होगी सावित्री की वह प्रसिद्ध पंक्ति, जिसे तुमने माँ के अधरों से सुना है :

"स्वर्ण मीनार बन गयी है, अग्निशिखा-शिशु का जन्म हो गया है।"

उन्होंने नव जीवन की यह मीनार बना दी है और वह शिशु यहाँ पर है, स्वर्णिम शिशु। यह स्वर्णिम शिशु तुममें से प्रत्येक के अन्दर है। तुम्हें उसे ढूँढ़ना होगा, पहचानना होगा, वही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है; पृथ्वी पर तुम जो करना और होना चाहते हो, वह उसका ध्येय और उसकी परिपूर्णता है। तुममें से कुछ ने अवश्य ही अपने अन्दर इस शिशु की उपस्थिति का अनुभव किया होगा । कुछ ने उसे अपने अन्दर दिव्य शिशु के रूप में देखा होगा। ये वस्तुएँ जिन्हें ईश्वरीय भेंट कहा जाता है-सामान्यतः सपनों में आती हैं। मैं कम-से-कम कुछ को जानता हूँ जिन्होंने इसे देखा है और मुझे अपने चमत्कारी अनुभव के विषय में बतलाया है। यह प्रत्येक के लिए एक सम्भावना है और अगर तुम उसे देख पाते हो, तुम्हें उसे पहचानना होगा, समस्त प्रेम और स्नेह से पकड़ रखना और ग्रहण करना होगा। माँ अभी भी हमारे मध्य में जीवित और कार्यरत हैं और उनकी उपस्थिति अब भी यहाँ है, यहाँ तक कि ठोस रूप में है, क्योंकि तुममें से प्रत्येक के अन्दर दिव्य शिशु है ।

मैं एक प्रार्थना के साथ समाप्त करता हूँ, एक प्रार्थना जो मैंने कुछ समय पहले माँ से की थी, यह हमारी क्रीड़ाभूमि के छोटे बच्चों की ओर से है :

"मधुर माँ, तुम्हारी क्रीड़ाभूमि के बच्चे देवदूत हैं; वे दिव्य या दैवी बने नहीं हैं, वरन् वे देवदूत हैं, पार्थिव देवदूत। उन्हें हमेशा अपनी आँखों-तले रखिये, उन्हें अपनी प्रेममयी चेतना की गोद में झुलाइये। "

तुम्हारी ओर से मैंने माँ से यही प्रार्थना की थी, और मुझे विश्वास है कि माँ ने प्रत्युत्तर में हाँ कहा।

नवंबर 1973 में प्रकाशित हुआ — श्रीनलिनीकान्त गुप्त

माताजी

माताजी के बारे में कुछ कहने से पहले यह जानना उपयोगी होगा कि वे हैं कौन और इस विषय में श्री अरविन्द से अधिक प्रामाणिक कौन हो सकता है?...

उनका कहना है कि "माताजी अतिमानस को उतारने के लिए आयी हैं और उसका अवतरण ही उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति को सम्भव बनाता है।"

वे एक और जगह कहते हैं: "एक ही दिव्य शक्ति है जो सारे विश्व में और व्यक्ति में, और व्यक्ति तथा विश्व के परे काम करती है। माताजी इन सबकी प्रतिनिधि हैं। वे यहाँ एक ऐसी चीज़ को उतारने के लिए काम कर रही हैं जो अभी तक भौतिक जगत् में प्रकट नहीं हुई वे यहाँ पर जीवन को रूपान्तरित करने के लिए काम कर रही हैं - तुम उन्हें इस उद्देश्य से काम करती हुई दिव्य शक्ति मान सकते हो।"

माताजी ने सन् १८७८ में २१ फ़रवरी के दिन पैरिस में जन्म लिया। उन्होंने जन्म तो यूरोप में लिया पर उनकी रगों में अरब और तुर्क रक्त था। उनके माता पिता उनके जन्म से कुछ पहले ही फ्रांस में आकर बसे थे। बचपन से ही माताजी और बच्चों से बिलकुल अलग थीं। शायद वे दो-तीन वर्ष की अवस्था से ही बाहरी रूप से जाने बिना ही ध्यान किया करती थीं।

१९२० में उनसे किसी ने दो प्रश्न किये थे :

१. आपको धरती पर जो कार्य पूरा करना है उसकी चेतना आपके अन्दर कब जागी?
२. आप श्री अरविन्द से कब और कैसे मिलीं?

माताजी अपने बारे में बात करना पसन्द नहीं करती थीं फिर भी इस जिज्ञासु के आग्रह पर उन्होंने उत्तर दिया, "अपने उद्देश्य के ज्ञान के बारे में यह कहना मुश्किल है कि वह मुझे कब प्राप्त हुआ। शायद मैं उसके साथ ही पैदा हुई थी। मन और मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ इस चेतना की यथार्थता और पूर्णता भी बढ़ती गयी।

११ और १३ की अवस्था के बीच कुछ चैत्य और आध्यात्मिक अनुभूतियों ने मुझे न केवल भगवान् को उपस्थिति के दर्शन करवा दिये बल्कि यह भी बतला दिया कि मनुष्य उनके साथ एक हो सकता है, उन्हें पूर्ण रूप से चेतना और कार्य में चरितार्थ कर सकता है, उन्हें धरती पर दिव्य जीवन में अभिव्यक्त कर सकता है। मुझे कई शिक्षकों ने मेरे शरीर की सोयी हुई अवस्था में यह बतलाया और इसके लिए साधना सिखायी। उनमें से कुछ लोग मुझे बाद में सशरीर भी मिले।

उसके बाद आन्तरिक और बाह्य विकास चलता रहा। इनमें से एक सत्ता के साथ चैत्य और आध्यात्मिक सम्बन्ध अधिकाधिक स्पष्ट रूप में प्रायः ही होने लगा और यद्यपि मैं भारतीय दर्शन या धर्म के बारे में न के बराबर जानती थी फिर भी मैं उन्हें कृष्ण कहने लगी और मुझे पता चला कि मैं उन्हीं के साथ मिल कर धरती पर भगवान् का काम करूंगी।

१९१० में मेरे पति, अकेले पाण्डिचेरी आये जहाँ बड़ी मजेदार और विचित्र परिस्थितियों में उनका श्रीअरविन्द से परिचय हुआ। तब से हम दोनों को भारत आने की प्रबल इच्छा थी। मैंने हमेशा भारत को ही अपनी सच्ची जन्मभूमि माना था। १९१४ में हमें यह आनन्द प्रदान किया गया।

जैसे ही मैंने श्रीअरविन्द को देखा मैंने पहचान लिया कि ये तो मेरी वही सुपरिचित सत्ता हैं जिन्हें मैं कृष्ण के नाम से जानती थी... मेरा खयाल है कि इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुझे यह पूरा-पूरा विश्वास क्यों है कि मेरा स्थान उन्हीं के पास और मेरा काम उन्हीं के साथ, यहाँ, भारत में है।"

१९२० में जापान में रहते हुए माताजी ने अपना परिचय देते हुए लिखा :

मैं किसी देश, किसी सभ्यता, किसी समाज, किसी जाति की नहीं मैं केवल भगवान् की हूँ।

मैं किसी मालिक, शासक, कानून, सामाजिक प्रथा का हुकुम नही मानती, मैं केवल भगवान् की आज्ञा का पालन करती हूँ।

मैंने सब कुछ, इच्छा, जीवन, आत्मा, सब कुछ उन्हें अर्पित कर दिया है, अगर उनको इच्छा हो तो में एक-एक बूंद करके अपना सारा रक्त, पूरे आनन्द के साथ उन्हें अर्पित कर सकती हूँ। उनकी सेवा में भी बलिदान न होगा क्योंकि सब कुछ पूर्ण आनन्द होगा।"

सन् १९३७ में माताजी अपने भगवान से कहती हैं :

"मैं भौतिक जगत में, धरती पर क्या क्या लाना चाहती हूँ।

१. पूर्ण चेतना।

२. समग्र ज्ञान, सर्वज्ञता।

३. अपराजेय, अबाध, अपरिहार्य शक्ति और सर्वशक्तिमत्ता ।

४. पूर्ण, सतत, अडिग, हमेशा नया होता रहने वाला स्वास्थ्य |

५. शाश्वत यौवन, सतत विकास, अबाध प्रगति।

६. पूर्ण सौन्दर्य, जटिल और सम्पूर्ण सामञ्जस्य।

७. अखूट, अनुपम धन-समृद्धि, समस्त जगत् के धन-वैभव पर प्रभुत्व।

८. रोग मुक्त करने और सुख देने की क्षमता।

९. सभी तरह की दुर्घटनाओं से मुक्त रहने, सभी विरोधी आक्रमणों के आगे अजेय रहने की क्षमता।

१०. सभी क्षेत्रों और सभी क्रियाओं में अपने-आपको पूरी तरह अभिव्यक्त करने की क्षमता।

११. भाषाओं की प्रतिभा, अपने-आपको सभी के सामने पूरी तरह समझा सकने की क्षमता। १२. और वह सब कुछ जो तेरा काम पूरा करने के लिए ज़रूरी हो।"

इसी तरह एक ओर जगह कहती हैं:

"मैं चाहती हूँ :

१. व्यक्तिगत रूप से सदा-सर्वदा परम प्रभु की पूर्ण अभिव्यक्ति होना।

२. कि तुरन्त अतिमानसिक विजय, अभिव्यक्ति और रूपान्तर सिद्ध हो जायें।

३. कि वर्तमान और भविष्य के लिए समस्त संसार से दुःख दारिद्र्य गायब हो जायें।"

लोग कहते हैं कि संसार में कहीं न्याय नहीं है, भगवान् मनुष्य के साथ न्याय नहीं करते लेकिन क्या वे जानते हैं कि न्याय क्या है और उसकी क्रिया कैसी होती है? लीजिये, माताजी से सुनिये :

"न्याय वैश्व प्रकृति की गतिविधियों का कठोर, युक्तियुक्त नियतिवाद है। रोग इसी नियतिवाद का भौतिक शरीर में विनियोग है। चिकित्सक का मन इस अपरिहार्य न्याय की नींव पर खड़ा होकर ऐसी परिस्थितियाँ लाने की कोशिश करता है जिन्हें युक्तियुक्त रूप से अच्छे स्वास्थ्य की ओर ले जाना चाहिये। नैतिकता यही चीज़ सामाजिक शरीर में और तपस्या इसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में कार्यान्वित करती है।

केवल भागवत कृपा में ही वह शक्ति है जो वैश्व न्याय के मार्ग में हस्तक्षेप कर सकती है और उसे बदल सकती है। अवतार का महान् कार्य है, भागवत कृपा को धरती पर प्रकट करना। अवतार के शिष्य होने का अर्थ है, भागवत कृपा का यन्त्र बनना। माता तादात्म्य द्वारा वैश्व न्याय-तन्त्र के पूर्ण ज्ञान के साथ तादात्म्य द्वारा भागवत कृपा की महान वितरक हैं।

और उनकी मध्यस्थता द्वारा भगवान् के प्रति सच्ची और विश्वासपूर्ण अभीप्सा की हर गति, उत्तरस्वरूप भागवत कृपा के हस्तक्षेप को नीचे उतार लाती है।

हे प्रभो! कौन है जो तेरे सामने खड़ा होकर पूरी सच्चाई के साथ कह सके कि उसने कभी कोई भूल नहीं की। दिन में कितनी बार हम तेरे कार्य के विरुद्ध अपराध करते हैं और हमेशा तेरी कृपा उन्हें मिटा देने के लिए आ जाती है।

तेरी कृपा के हस्तक्षेप के बिना, कौन है जो बहुधा तेरे वैश्व न्याय के विधान के अपरिहार्य खड्ग के नीचे न आता।

यहाँ हर एक, समाधान के लिए किसी-न-किसी असम्भवता का प्रतिनिधि है, लेकिन चूँकि तेरी भागवत कृपा के लिए सब कुछ सम्भव है, तो क्या यह तेरा कार्य न होगा कि समग्र में और ब्योरे में, इन असम्भवताओं को भागवत उपलब्धियों में रूपान्तरित कर दे?"

१५ जनवरी १९३३

१५ अगस्त १९५४ को माताजी ने सभी आश्रमवासियों और बाहर से आये हुए दर्शनार्थियों के आगे घोषणा की :

"मैं इस दिन के साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषा की अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूँ - वह है भारतीय नागरिक बनने की अभिलाषा। सन् १९१४ से ही, जब मैं पहली बार भारत में आयी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा और अन्तःकरण का देश है। मैंने निश्चय किया था कि ज्यों ही भारत स्वतन्त्र होगा मैं अपनी इस अभिलाषा को पूरा करूंगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहाँ पॉण्डिचेरी के आश्रम के प्रति अपने भारी उत्तरदायित्व के कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जब कि मैं अपने विषय में यह घोषणा कर सकती हूँ।

लेकिन, श्री अरविन्द के आदर्श के अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्व में है, न कि विभाजन में एक राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिए दूसरी को छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है, इसलिए मैं आशा करती हूँ कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनाने की छूट रहेगी, अर्थात्, भारतीय हो जाने पर भी मैं फ्रेंच बनी रहूंगी।

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूँ। अपनी इच्छा और रुचि से मैं भारतीय हूँ। मेरी चेतना में इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है, इसके विपरीत वे एक-दूसरे से भली प्रकार मेल खाती हैं और एक-दूसरे की पूरक हैं, मैं यह भी जानती हूँ कि मैं दोनों देशों की समान रूप से सेवा कर सकती हूँ, क्योंकि मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है श्रीअरविन्द की महान शिक्षाओं को मूर्त रूप देना। और उन्होंने अपनी शिक्षाओं में यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुतः एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधता के द्वारा इस भूमि पर भागवत एकत्व को अभिव्यक्त करने के लिए ही उनका अस्तित्व है।"

माताजी के अस्सीवें जन्मदिन पर उनसे बहुत आग्रह किया गया कि वे अपने कुछ संस्मरण सुनायें। उन्होंने कहा, “संस्मरण संक्षिप्त होंगे। मैं श्री अरविन्द से मिलने के लिए भारत आयी, मैं उनके साथ रहने के लिए ही भारत में रही। जब उन्होंने शरीर त्यागा तो मैं उनका कार्य करने के लिए ही बनी रही, उनका कार्य है, सत्य की सेवा करना और मानवजाति को प्रकाश देना और धरती पर भगवान् के राज्य को जल्दी लाना।”

लेकिन लोगों की उत्सुकता तो बनी ही रहती थी, वे उनके बारे में तरह-तरह की बातें जानना चाहते थे। ऐसे प्रश्नों के उत्तर में माताजी कहती हैं: “इस शरीर के भौतिक जीवन के बारे में प्रश्न मत पूछो। वे अपने-आप में मज़ेदार नहीं हैं और उन्हें ध्यान न खींचना चाहिये।

मैं अपने सारे जीवन में जाने या अजाने वही करती आयी जो भगवान् ने चाहा, मैं वही बनी जो भगवान् मुझे बनाना चाहते थे, मैंने वही किया जो भगवान् मुझसे करवाना चाहते थे।”

इस पर भी उनके बारे में कुछ जानने की इच्छा बनी रही तो माताजी ने किसी को लिखा “यह आख़िरी बार मेरे भूतकाल के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ कहा जाये यह शरीर नहीं चाहता कि उसके बारे में कुछ कहा जाये, वह चाहता है कि उसे शान्त रहने दिया जाये और हो सके तो उसकी ओर ध्यान ही न दिया जाये।”

ऐसी थी माताजी। वे जो आन्तरिक काम करती थी उनके बारे में तो वे ही जाने पर बाह्य रूप से, भौतिक कामों की ही अगर सूची बनायी जाये तो एक पोथी तैयार हो जायेगी। आश्रम की, शिष्यों की, बाहर के जिज्ञासुओं की हर एक और हर प्रकार की समस्या का समाधान करना, रोते को आश्वासन देना, उद्धत का सिर नीचा करना, जिज्ञासु को ज्ञान प्रदान करना और बड़ी कठिन समस्याओं का हल करना यह सब उनके लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण था।

एक बार आश्रम के कई विभागाध्यक्ष अपनी “बड़ी-बड़ी समस्याएँ” लेकर माताजी के पास आये हुए थे और माताजी एक छोटे बच्चे की स्कूल - सम्बन्धी शिकायतें सुनने में व्यस्त थीं। ‘बड़ों’ को अवसर न मिला तो उनमें से एक ने पूछ ही तो लिया, “माँ, जब हम अपनी समस्याएँ लेकर आते हैं ठीक तभी यह लड़का आकर अपनी बक-बक करने लगता है, आप उसे इतना महत्त्व क्यों देती हैं?” माताजी ने हँसते हुए कहा, “मेरे लिए तुम दोनों की समस्याओं का समान मूल्य है”, और सचमुच जीवन में ऐसा ही देखा जाता था, उनके सामने कोई बड़ा या छोटा न था उनका वरद हस्त सब पर समान रूप से रहता था वहाँ कोई समस्या या कोई व्यक्ति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण और कोई नगण्य या उपेक्षणीय न था। उन्होंने ही तो कहा था कि भागवत कृपा के आगे कौन योग्य है और कौन अयोग्य सभी उसी दिव्य जननी की सन्तान हैं। वे हर एक को उसकी ग्रहणशक्ति के अनुसार, उसकी आवश्यकता के अनुसार देती हैं।

स्व. रवीन्द्रजी (‘लाल कमल’ पुस्तक से)

युग- पुरुष श्री अरविन्द

-राम प्रकाश अग्रवाल

आधुनिक भारत के इतिहास में श्री अरविन्द का स्थान अन्य नेताओं से पृथक्, विशिष्ट और अन्यतम है। इस युग के सूत्रधारों में जहाँ अनेक का जीवन राजनीति के भँवरों में उलझ गया, वहाँ श्रीअरविन्द ने अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार संतुलित रखा कि वे सनातन भारतीय जीवन-धारा को एक शाश्वत लक्ष्य की ओर मोड़ने वाले महर्षियों की पांत में आ गये। उन्होंने योरोपीय साहित्य की सौन्दर्य-चेतना को समग्रत: आत्मसात् किया और उसकी कलम भारत की सत्यमयी शिव-संस्कृति में आरोपित करके हिन्दू धर्म को नवोन्मेष प्रदान किया। उनकी मौलिक मनीषा और जन्म-जात प्रतिभा सृजन एंव संगठन के इतने विविध क्षेत्रों में प्रसारित हुई कि वे युग-युग के इतिहास-पुरुष बन गये।

वह उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का युग था, जिसमें इस महान् देश की स्वाधीनता के आध्यात्मिक संग्राम की रूप रेखा बनी, बिगड़ी, और अन्तत: सफल हुई। श्रीअरविन्द का जीवन-फलक इसी काल-अवधि में विस्तीर्ण है—15 अगस्त 1872 का जन्म और 5 सितम्बर 1950 का निर्वाण तथा 9 दिसम्बर की महासमाधि। इस महत्त्वपूर्ण युग-बेला में उन्होंने भारतीय इतिहास के अन्तश्र्चेतन को इस गहराई से स्पर्श किया कि विस्मृति का अंधकार मिटता हुआ और आशा का आलोक फैलता हुआ प्रतीत होने लगा। जहाँ अन्य राजनीतिक इतिहास निर्माताओं का कृतित्व विवादों के घेरे में आ जाता है, वहाँ श्रीअरविन्द की जीवन- साधना मनन, अनुचिन्तन और रसास्वादन का विषय बन गई है।

1. इंग्लैण्ड में पोषित भारतीय आत्मा

श्री अरविन्द के जीवन –क्रम पर दृष्टिपात करें तो उसमें एक जीवन्त उपन्यास की रोचकता, अप्रत्याशित घटनाओं की नाटकीयता, काव्य का रसास्वाद और संगीत की रागिनी सी सुनाई पड़ती है। श्री के.आर. श्रीनिवास द्वारा लिखित उनकी भव्य जीवनी को “बिना किसी अतिशयोक्ति के अंग्रजी साहित्य की श्रेष्ठ कृति” कहा गया है – उनका जीवन इतनी विपरीत और विरोधी परिस्थितियों के बीच, संघर्ष और संकल्प के साथ, रहस्यात्मक और अलौकिक घटनाओं को लेकर विकसित हुआ है जैसे कि कोई दैवी शक्ति उसका गठन कर रही है।

श्रीअरविन्द की शिक्षा का श्रीगणेश उनके पिता की महत्वाकांक्षा के अनुसार संपूर्णतः अंग्रेजी वातावरण में हुआ। उन्हें पाँच वर्ष की अवस्था में दो बड़े भाइयों (मनमोहन और विनय भूषण) के साथ दार्जीलिंग के एक ऐसे कान्वेंट में भर्ती कराया गया जहाँ केवल उच्च परिवारों के बच्चे आयरिश नन अध्यापिकाओं से शिक्षा प्राप्त करते थे। तत्प पश्चात् सात वर्ष की आयु में डा. कृष्णधन घोष अपने दो बड़े पुत्रों के साथ उन्हें लेकर लन्दन गये, जहाँ मान्चेस्टर के ड्रूएट दम्पति को सौंपते समय उन्हें हिदायत दी गई कि बच्चों को भारतीयों के सम्पर्क से दूर रखा जाये। कुछ समय के बाद ही पिता भारत लौट आये और

बच्चों की ओर से असावधान हो गये, यहाँ तक कि "बालक अरविन्द को सवेरे एक प्याला चाय और मक्खन के साथ रोटी की एक-दो स्लाइसें मिल जाती थीं, तथा शाम को केवल एक पेनी का सेवलाय। लन्दन की कड़ाके की सर्दी में उनके पास न तो ओवरकोट था और न कमरा गरम करने के साधन।" इन परिस्थितियों में किशोर अरविन्द ने सेंट पाल में स्कूल की शिक्षा और केम्ब्रिज के किंग्स कालिज में स्नातक शिक्षा (ट्रपोस) शीर्ष छात्र के रूप में सम्पन्न की और चर्च की धर्म-भाषा लैटिन, योरोप की प्राचीन साहित्य- भाषा ग्रीक, आधुनिक फ्रेंच और अंग्रेजी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया तथा इटालियन, जर्मन और स्पेनिश का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। साहित्य के अतिरिक्त उनकी विशेष रुचि मध्यकालीन और आधुनिक योरोप के इतिहास में थी, अंग्रेजी साहित्य में रोमांटिक कवि शैली की कविता 'रिवोल्ट आफ इस्लाम' उन्हें विशेष प्रिय थी, और शेक्सपीयर तथा मिल्टन पर उनके तुलनात्मक निबन्ध ने किंग्स कॉलिज के विशिष्ट प्रोफेसर ऑस्कर ब्राउनिंग को अत्यधिक मुग्ध किया था। अपने पिता को पत्र में इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए श्री अरविन्द ने लिखा था कि इस सम्बन्ध में उन्होंने "अपने प्राच्य रस को उसकी उच्चतम स्थिति तक पहुँचाया था।"

इस प्रतिभात्मक वैभव में भी श्रीअरविन्द के अनासक्तिमय भारतीय संस्कार सुरक्षित रहे। उन्होंने इंग्लैण्ड में रहकर सम्पूर्ण शिक्षा निरुपाधि ही ग्रहण की और आई.सी.एस. परीक्षा में, ट्रिपोस के पाठयक्रम को केवल दो वर्ष में पूरा करने के साथ, उत्तीर्णता प्राप्त करके भी घुड़सवारी की परीक्षा में सम्मिलित न होकर अपने को अयोग्य घोषित करा लिया। उनकी रचनात्मक प्रतिभा प्रारम्भ से ही काव्य- सृजन की ओर अग्रसर होती रही जिसके साथ ही अनके आध्यात्मिक मानस में क्रांति की लपटें भी भड़कती रही। इसका नमूना इंग्लैण्ड में ही आयरिश नेता पार्नेल के देहावसान पर रचित उनकी काव्य श्रध्दांजलि में मिलता है। वहाँ उन्होंने 'इण्डियन मजलिस' का भी नेतृत्व किया और "लोटस ऐंड डेगर" (कमल और कटार) जैसी क्रांतिकारी संस्था भी स्थापित की।

ऐसे उदीयमान तेजस्वी व्यक्तित्व का परिचय जब 1893 में बड़ौदा रियासत के महाराज सयाजी राव गायकवाड़ से उनकी लन्दन-यात्रा के अवसर पर कराया गया तब उन्होंने सहर्ष इस तरुण को आई.सी.एस मानकर ही अपना सचिव नियुक्त कर लिया। इस प्रकार चौदह वर्ष का विदेशवास (1879 से 1893) पूरा करके श्री अरविन्द मातृभूमि के दर्शन की उमंग लिये 6 फरवरी 1893 को अपोलो बन्दरगाह पर उतरे। उनके हृदय में देश-प्रेम की उन्मादी वीणा बज रही थी-

मुझे कमलासना सरस्वती ने हिमाच्छादित प्रदेशों में पुकारा है
जहाँ वेगवती गंगा दक्षिण के सागर-तट की ओर दौड़ती है
जिस पर लिखा करते है ईडन उधान वाले पुष्प।
(इन्वाय कविता का हिन्दी अनुवाद)

इस कविता से प्रकट है कि ईसाई धर्म से अछूते रहकर भी श्रीअरविन्द ने बाइबिल (ईडन गार्डन) की साहित्य- निधि को अपनाया था। कितना भव्य था वह 1893 का वर्ष जब एक भारतीय युवक अरविन्द इंग्लैण्ड से पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करके लौट रहा था और दूसरा युवक नरेन्द्र विवेकानंद भारतीय अध्यात्म

और भक्ति से पश्चिम दिशा को रंग देने के लिए अमेरिका को प्रस्थान कर रहा था।

2. महाराष्ट्र और बंगाल का क्रांति-सेतु

बड़ौदा में श्रीअरविन्द लगभग 15 वर्ष (1893-1907) रहे, परन्तु इस बीच वे बंगाल में निरन्तर जाते-आते रहे। इस प्रकार भारत की भी पूर्वी और पश्चिम दिशाओं की संस्कृति का समन्वय उनके जीवन में हुआ, जिसने उनके राजनीतिक दर्शन की प्रस्तावना निर्धारित की। उनकी प्रतिभा बड़ौदा के प्रशासनिक और रियासती कार्यकलाप में बंधकर नहीं रही और उनकी साहित्य चेतना निरन्तर विकसित होती रही। बड़ौदा के कालिज में उन्होंने फ्रेंच और अंग्रेजी का अध्यापन भी किया तथा विभागाध्यक्ष और प्राचार्य रहे। वे सविचालय से अधिक महाराज की सहायता उत्तम शैली के पत्रों और भाषणों को तैयार करने में करते थे। इसके साथ ही महाराष्ट्र के मराठी- अंग्रेजी साप्ताहिक 'इन्दु प्रकाश' में उन्होंने नियमित रूप से लिखना आरम्भ किया, जिसके द्वारा उनकी प्रतिभा का नया अंकुर फुटा और भारत के जन-संचार माध्यम को राष्ट्रीयता का स्तर प्राप्त हुआ। इसी के साथ बंगाल के ऐतिहासिक पत्र 'वन्दे मातरम्' की बागडोर भी उन्होंने अपने हाथों में ली और भारतीय पत्रकारिता का क्रांतिकारी श्रीगणेश करके उसके आदि गुरु कहलाये।

इसी बीच भारत के राष्ट्रीय जीवन के साथ-साथ श्रीअरविन्द के भी राजनैतिक, सामाजिक और पारिवारिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण घटनायें घटित हुई, परन्तु उनकी आन्तरिक साधना का प्रवाह अनवरुध्द रहा। उन्होंने बड़ौदा में रहते हुए भारतीय वाड्मय का सिलसिलेवार अध्ययन, अध्यापक और लेखन भी किया (वेद-उपनिषद- पुराण-महाभारत-गीता-रामायण और कालिदास के क्लासिक्स तथा अन्य ललित साहित्य), तथा पत्रकारिता के साथ भी अधिकाधिक जुड़ते गये। उन्होंने 'इन्दु प्रकाश' के लिए अपना पहला राजनैतिक लेख 'इंडिया ऐंड द ब्रिटिश पार्लियामेंट' लिखा, तत्पश्चात एक लेख-माला 'न्यू लैम्प फार ओल्ड' लिखी और इसके साथ ही काव्य- रचनायें 'सांग्स टु मिर्टिला' तथा 'उर्वशी' भी पूरी की। इस प्रकार इंग्लैण्ड के विधार्थी-जीवन में आरम्भ साहित्यिक लेखन की प्रतिभा जो 'फाक्स फैमिली मैग्जीन' से विकसित होने लगी थी, स्वदेश में आकर बहुमुखी बनने लगी। वे साहित्यिक, दार्शनिक और राजनैतिक चिन्तन तथा लेखन को समानान्तर चलाते रहे।

इस आन्तरिक सक्रियता के साथ-साथ वे बाहर की भी राजनीतिक गतिविधियों में भरपूर भाग लेते जा रहे थे। उन्होंने उस समय के कांग्रेस-अधिवेशनों में तथा क्रांतिकारी संगठनों में भाग लिया और बंगाल-विभाजन के अवसर पर (1905) 'नो कम्प्रोमाइज' लेख लिखा, भवानी मन्दिर की कल्पना की और उसका प्रारूप बनाया, बंगाल में 'नेशनल काउंसिल आफ एजुकेशन की स्थापना की और 'वन्दे मातरम्' में डाक्ट्रीन आफ पैसिव रेजिस्टेंस' लेख-माला प्रकाशित की। इस अवधि में उनके पारिवारिक जीवन की मुख्य घटना मृणालिनी देवी से विवाह की है (1905), और बाहरी जीवन की मुख्य घटना महाराज गायकवाड के साथ कश्मीर-यात्रा की है जिसमें उनके जीवन का एक मुख्य रहस्यात्मक अनुभव तख्ते सुलेमान पर असीम का साथ, पंजाब में लाला लाजपतराय के साथ और बंगाल और बंगाल में क्रान्तिकारी नेता विपित चन्द्रपाल के साथ स्थापित तथा हुआ यह 'बाल- लाल- पाल' की त्रिवेणी उनके राजनितक- दर्शन को और अधिक प्रबुध्द करने में सहायता हुई। अपने विस्फोटक क्रांतिकारी अनुज वारीन्द्र घोष के साथ भी उनकी सहानुभूति स्वाभाविक ही थी, जिसने सुप्रसिध्द अलीपुर कोन्स्पिरेसी केस के साथ अनका नाम जोड़ दिया। इसके

द्वारा उन्हें अलीपुर के एक वर्षीय कारावास (5 मई 1908-6 मई 1909) का दण्ड मिला, जो उनके लिए श्री कृष्ण की भागवत अनुभूति का प्रसाद बन गया, परन्तु बरीन को प्राण-दण्ड घोषित हुआ जो बाद में आजीवन कारावास में बदल दिया गया।

इस समस्त उथल-पुथल और भौतिक हलचल के बीच योगी की अन्तश्चेतना विकसित हो रही थी। इसकी प्रारम्भिक जोरदार लहर काश्मीर मे तख्ते सुलेमान की रहस्यानुभूति के अवसर पर उठी थी (1904), जो महाराष्ट्र योगी विष्णु भास्कर लेले के सान्निध्य (1908) से उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र त्याग कर "नारायण को नमस्कार" के क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित कर रही थी। अत: इन्दु प्रकाश (मराठी) और वन्दे मातरम् (बंगाल) का तूफान, अलीपुर के कारावास की कृष्ण-कथा में प्रशांत होता हुआ दक्षिण के सागर-तट पर पांडिचेरी- आश्रम की ओर बढ़ चला। बंकिम चन्द्र का सुप्रसिध्द 'गीता निरंतर उनके साथ था।

3. अलीपुर- जेल से वेदपुरी की ओर

अलीपुर की कारावास-कथा श्रीअरविन्द के जीवन की भागवत कथा है। अब उस पुराने अरविन्द घोष का कायाकल्प (कायापलट) हो गया था। ब्रिटिश सरकार के "कोप का वास्तविक परिणाम" यह निकला कि उसने " ईश्वर को पा लिया था"। यह अनुभव श्रीअरविन्द की योग- साधना का वह दिव्य सोपान था जो बाद में सिध्दि दिवस (नवंबर 24,1926) अथवा विजय-दिवस बना, श्री कृष्ण का अधिमानस देवता के रूप में अवतरण हुआ और जन-सम्पर्क का सर्वथा परित्याग कर श्रीअरविन्द पूर्ण एकान्त में चले गये। अन्तिम दिनों तक वे वहीं रहे, केवल श्री माँ से भेंट होती थी और आश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था जगदम्बा के हाथों में आ गई थी।

आश्रम की चर्चा से पूर्व कारावास-कथा और आश्रम के बीच की मंजिल पर प्रकाश डालना, इस युग-पुरूष के वास्तविक व्यक्तित्व का आविर्भाव प्रकट करने के लिए, आवश्यक है। अलीपुर का कारावास नवयुग के आधिमानस-कृष्ण की मथुरा थी और पांडिचेरी आश्रम महाराज का गोकुल- वृन्दावन। श्रीअरविन्द के जेल- जीवन के रहस्यात्मक अनुभव इस प्रकार थे—जैसे कि "भगवान ने हाथों में गीता' रख दी हो, "नारायण संतरी बनकर पहरा" दे रहें हों, पलंग की जगह मोटे कम्बलों में लग रहा था जैसे कि "सखा और प्रेमी कृष्ण बाहुओं में लिये हुए हों" कैदियों, चोरों- हत्यारों-बदमाशों की ओर देखा तो "वासुदेव दिखाई पड़े।" इस निर्जन और एकान्त में श्रीअरविन्द को अपने तपस्वी सहयोगियों की छायायें भी नजर आईं, उन्हें अलीपुर बम्ब कांड के यशस्वी न्याय- विजेता देशबन्दु चितरंजन दास का स्मरण आया जिन्होंने उस ऐतिहासिक मुकदमे के लिए अपनी स्वर्णमयी वकालत और जीवन-समृध्दि का बलिदान कर दिया था और एक घटना को "सिध्दान्त और राष्ट्रीय अधिकारी की सीमा तक पहुँचाकर मानवीय न्यायालय से परे इतिहास के उच्चतम (आध्यात्मिक) न्यायालय में पहुँचा दिया था।"

श्री सी.आर. दास के अतिरिक्त तपस्विनी सहधर्मिणी देवी का मूल तप भी परोक्ष रूप से सहायक था ही जिनके साथ की गई तीन प्रतिज्ञाओं में से एक थी "भगवान् का साक्षात्कार प्राप्त करना। " श्रीअरविन्द के इस एकान्तिक अनुभव में महात्मा गांधी के सत्याग्रह का भी नेपथ्य-गान निहित था। इसमें मौन और

मुखरित थे आजादी और बलिदानों के गीत, सविनय अवज्ञा और स्वदेशी आन्दोलन, सत्याग्रह की सम्पूर्ण आध्यात्मिक भूमिका और "रघुपति राघव राजाराम" का संकीर्तन। श्रीअरविन्द ने श्री कृष्ण का साक्षात्कार किया था, महात्मा गांधी ने भगवान राम के नाम का संबल लिया, श्रीमद्भगवत गीता का निष्काम कर्मयोग इन दोनों के जीवन में चरितार्थ था, अन्तर था केवल अहिंसा-दर्शन की सीमाओं में। श्री गांधी राजनैतिक धरातल पर 'बापू' और महात्मा गांधी के रूप में राष्ट्रनायक बनकर सामने आये और श्रीअरविन्द अधिक गहरे आध्यात्मिक धरातल पर महायोगी के रूप में आन्तरिक संचालक थे। उनके कृतित्व की मंत्रमयी यह परिभाषा बड़ी मार्मिक है –"देश-प्रेम का कवि, राष्ट्रीयता का देवदूत और मानव जाति का प्रेमी (पोयट ऑफ पेट्रियटिज्म, प्राफेट ऑफ नेशनलिज्म एण्ड लवर ऑफ ह्यूमेनिटी")-सी.आर दास।

4. उत्तर योगी और महाशक्ति

श्री माँ की श्रीअरविन्द से आकस्मिक भेंट भी बड़ी रहस्यमयी और चमत्कारिक थी। उनके पति पॉल रिचर्ड श्रीअरविन्द से 1910 में मिल चुके थे और पेरिस लौट कर उन्होंने श्री माँ को विवरण सुनाया था, जिसे सुनते ही उन्होंने अनुभव किया कि यही तो वह पुरूष है जिससे वे बचपन से स्वप्नों में देखती रही थीं। अत: 1914 में वे पति के साथ भारत आने पर श्रीअरविन्द से मिलीं और1920 से स्थायी रूप से आश्रम में आकर रहने लगीं।

श्रीमाँ की जीवन भी श्रीअरविन्द के समान रहस्यमयी अनुभवों से पूर्ण है और उनका स्वभाव एंव व्यक्तित्व भी कुछ-कुछ वैसा ही था। (सन्दर्भ ऑल इण्डिया मैगजीन, फरवरी, मार्च 1923) वे भिन्न राष्ट्रीयताओं वाले माता-पिता की सन्तान थी, तुर्की पिता और मिस्त्र देश की माता। उनके पिता उनके जन्म (21 फरवरी 1878) के एक वर्ष बाद पेरिस में आकर बस गये थे। श्री मैरिस अलफस्सा ने अपनी पुत्री का नाम मिररा अलफस्सा रखा था जो सहज ही भारतीय भक्त मीरा के नाम में रूपांतरित हो गया। यह फ्रांस की मीरा बचपन से ही अन्तर्मुखी और आत्मलीन स्वभाव की थी जन्म दिया था। उनका विवाह हेनरी मोरिस्सेट से हुआ था (अक्टूबर 1897), और उन्होंने एक पुत्र (ऐन्द्रे) को भी जन्म दिया था (अगस्त 1898), परन्तु यह विवाह 11 वर्षों बाद विच्छिन्न हो गया (1908), और 1910 में उन्होंने श्री पॉल रिचर्ड से विवाह किया। पहले पति हेनरी मोरिस्सेट सुप्रसिध्द चित्रकार गुस्तेव मोरे के शिष्य थे, जिनका सान्निध्य मीरा की कलात्मक प्रकृत्तियों में सहायक हुआ होगा। बाद में आश्रम में आ जाने पर यही सर्जनात्मक वृत्ति फूलों का प्रतीकात्मक नामकरण करने में विकसित हुई। उनके दूसरे पति श्री पॉल रिचर्ड भी एक प्रखर प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्हें प्राच्य और पाश्चात्य दोनों ही दिशाओं के आध्यात्मवाद में रूचि थी, और वे ही मिररा अलफस्सा को श्री अरविन्द से मिलाने में (1914) सहायक और उन्हें स्थायी रूप से पांडिचेरी, ओरोविल तथा आश्रम की रचना के लिए समर्पित (1920) हो जाने में सहयोगी सिध्द हुए थे। उन्होंने आशैशव चलने वाले मिरा अलपस्सा के स्वप्नों को सम्मान दिया और श्रद्धापूर्वक भारतीय मीरा को श्रीकृष्णार्पित कर दिया। यह प्रसंग कवित्वमय था ही, और श्रीमाँ ने इसे इस प्रकार काव्यबद्ध किया था-

तेरे ही हैं मेरे निखिल विचार, भावना, चिन्तन।
मेरे उर-आवेग, हृदय-संकल्प, सकल समवेदन॥
तेरे ही हैं मेरे जीवन के व्यापार प्रतिक्षण।
मेरे तन का एक-एक अणु,

शोणित का प्रणित का प्रति कण-कण॥

-(श्री माँ की 29.3.1914 कविता अंग्रेजी रूपांतर की हिन्दी—श्री सुमित्रा नन्दन पंत)।

5. उत्तर पाड़ा और 15 अगस्त का भाषण

श्री अरविन्द की जीवनी, साहित्यिक रचनायें, टीकायें, समीक्षायें, निबन्ध, पत्रकारिता और भाषण, सभी कुछ साहित्य की निधियाँ हैं। ये दो भाषण भी देश-प्रेम के कवित्व में पगे हुए, वाग्देवी के वरदान और श्री अरविन्द की वाग्मिता के क्लासिक्स हैं। इनमें सनातन धर्म की सार्वभौमिकता, हिन्दू धर्म की समन्वयशीलता, भारतवर्ष के उत्थान में विश्व- मानव की स्वतंत्रता का आह्वान, एशिया का विराट् दर्शन, ईरान और पाकिस्तान की एकता की मर्मभेदी पुकार तथा भारतीय धर्म-दर्शन और वाङ्मय का सार सन्निहित है।

उत्तर पाड़ा का भाषण अलीपुर जेल से रिहाई के अवसर पर एक धर्मरक्षिणी सभा में (30 मई 1909) जन- सम्बोधन था, और 15 अगस्त का भाषण आकाशवाणी का प्रसारण था। दोनों ही संघ चिन्तन की अभिव्यक्ति थे —- स्पन्टेनियस ऑफ पावर फुल फीलिंग्स (वर्ड्सवर्थ)। उत्तर पाड़ा का भाषण पूर्व निर्धारित प्रारूप का परित्याग कर तत्काल प्रवाहित सनातन धर्म का गंध-काव्य था, जिसमें राष्ट्रीयता के वेद-मन्त्रों की लड़ी और आर्षवाणी का आधुनिक प्रवाह दर्शनीय है-"मेरे मन में जो कुछ था उसे भगवान् ने निकाल कर फेंक दिया है, और मैं जो कुछ बोल रहा हुँ वह एक प्रेरणा के वशीभूत बाध्य होकर।" इस अवसर पर उन्होंने कारावास-कथा की अनुभूतियों को दोहराया और उस भागवत-साक्षात्कार के रूप में सनातन धर्म पर आधारित हिन्दू धर्म की व्याख्या की—"भारतवर्ष ऊपर उठेगा तो उसका अर्थ होता है सनातनधर्म ऊपर उठेगा। भारतवर्ष बढ़ेगा और फैलेगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म बढ़ेगा और संसार पर छा जायेगा। धर्म के लिए और धर्म के द्वारा ही भारत का अस्तित्व है। धर्म की महिमा बढ़ाने का अर्थ है देश की महीमा बढ़ाना। जिसे हम हिन्दू धर्म कहते है वह वास्तव में सनातन धर्म है, क्योंकि यही एक ऐसा सार्वभौमिक धर्म है जो अन्य सभी धर्मो को अपने भीतर समेटता है। यदि कोई धर्म सार्वभौम न हो तो वह सनातन भी नहीं हो सकता। सनातन धर्म ही हमारे लिये राष्ट्रीयता है। यह हिन्दू जाति, आर्य जाति, सनातन धर्म को लेकर ही पैदा हुई है, उसी को लेकर चलती है, उसी से पनपती है।"

देश के नाम 15 अगस्त को आजादी के संदेश में उन्होंने मानव कल्याण और विश्व की एकात्मता के लिए भारत-पाकिस्तान के विभाजन को अप्राकृतिक बतलाते हुए उसके एकीकरण पर विशेष बल दिया है -"देश का विभाजन दूर होना ही चाहिए। आशा है वह दूर होगा, या तो तनाव ढीले पड़ जाने से, या शान्ति और समझौते की भावना धीरे-धीरे हृदयंगम कर लेने से, राष्ट्रीयता अपने को चरितार्थ करेगी ही, एक अन्तर्राष्ट्रीय भावना और दृष्टिकोण विकसित होगा।"

5. सावित्री का संगीत

विश्व- वाङ्मय में 'सावित्री' महाकाव्य का स्थान उसी प्रकार अप्रतिम है, जिस प्रकार विश्व के क्रान्तिकारियों और इतिहास- पुरूषों में श्रीअरविन्द का। इसे "मानव की नियति का महाकाव्य" कहा जाता

है (एपिक ऑफ डेस्टिनी ऑफ मैन), और अंग्रेजी भाषा का मुक्त छंद में रचित विशालतम काव्य बतलाया गया है-इसमें 23813 पंक्तियाँ है, जो भारतीय आदि काव्य वाल्मीकि रामायण के 24000 श्लोकों की सीमा तक पहुँचती है। श्री अरविन्द की साधना और व्यक्तित्व के अणु-परमाणु इसके प्रतीकों, शब्द-संकेतों और सूक्तियों में समाये हुए हैं। वेद का विश्वम्भर गायत्री मंत्र (जिसे सावित्री भी कहा जाता है) इसकी रचना में बीच का वृक्ष बन गया है, महाभारत का आख्यान - मणि सावित्री - गाथा इसमें आध्यात्मिक अन्योक्ति बन गई है, इटालियन महाकवि दान्ते के काव्य-रूपक 'डिवाइन कामेडिया' के तीन लोक नरक-शुध्दि-स्वर्ग (इन्फर्नो, पर्गेटेरियों, पैराडाइज) इसमें पिण्ड-ब्रह्माण्ड के सोपान प्रतीत होते हैं और दान्ते की स्वप्र-बालिका बीट्रीस (सुन्दरी कल्याणी) इसमें संकल्प- नायिका सावित्री बनकर अग्रसर हुई हैं। यूनानी कवि होमर के जटिल रूप और विस्तीर्ण उपमा में इसमें सूक्ष्म बिम्ब बन गई हैं, कीट्स की सौन्दर्य- भावना, रूमानी कवि शैले की उन्मुक्त उड़ान, मिल्टन की धर्म- निष्ठा, शेक्सपीयर के नाट्य-पात्रों की भंगिमायें और छवियाँ इसमें मूक अभिनय करती प्रतीत होती हैं, और आधुनिक भारतीय काव्य के अनेक उद्गम- स्त्रोत इसकी भाव-धारा और शिल्प में समाये हुए हैं। हिन्दी छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद की कामायनी का विश्व-कल्याण, महादेवी वर्मा का सतरंगी क्षितिज और सुमित्रा नन्दन पंत की अप्सरा-ज्योत्स्ना- स्वर्णधूलि-स्वर्ण किरण-उत्तर-अतिमा इसमें अधिमानस का संकेत देने का प्रयास करती प्रतीत होती हैं, तथा 'लोकायतन' महाकाव्य डिवाइन लाइफ का औपन्यासिक ताना-बाना पूरता प्रतीत होता है। स्वयं श्रीअरविन्द की सम्पूर्ण काव्य-साधना इसमें पुंजीभूत हो उठी है- सांग्स टु म्रिटिला, उर्वशी, स्टीन गाडेस (काली मूर्ति), विक्रमोर्वशी, रोडोगुन, विधापति के गीत (सांग्स) आदि। अत: सावित्री महाकाव्य को भारतीय संस्कृति का सनातन संगीत कहना होगा।

अन्त में, आंध्र विश्वविधालय के दीक्षान्त समारोह(11 दिसम्बर 1948) के अवसर पर, जिसमें राष्ट्रीय पुरस्कार ग्रहण करने के लिए न जा कर उन्होंने सारगर्भित सन्देश ही भेजा था, श्रीअरविन्द के प्रति डा. सी.आर रेड्डी के विस्तृत अभिवादन-भाषण के कुछ शब्द इस युग-पुरूष प्रस्तुत करते हैं- "श्री अरविन्द अपनी प्रतिभा के विस्तार और परिधि के क्षेत्र में जिस लोहे को छू देते हैं वह स्वर्ण बन जाता है। वे कवि, नाटकार, दार्शनिक, समालोचन, गीता, वेद तथा भारत के समस्त पौराणिक आख्यानों एंव उत्कृष्ट विधाओं के टीकाकार तथा भाष्यकार हैं। इन सब चीजों से बढ़कर वे सन्त हैं , जिन्होंने वैश्व आत्मा के साथ अपना एक्य साधित कर लिया है और गहराइयों की थाह लेकर अमूल्य तथा उज्ज्वल खजाने सतह पर ले आए हैं।

श्री अरविन्द 'माँ' के विषय में

दिव्य आगमन से

दिव्य और अनन्त माँके प्रति आत्म समर्पण करना हो, चाहे वह जितना कठिन क्यों न हो, हमारे लिए एकमात्र फलदायी साधन है और वही हमारा एकमात्र स्थायी आश्रय है। माँ के प्रति आत्म समर्पण करने का अर्थ यह है कि हमारी प्रकृति उनके हाथों का चित्र और हमारी अंतरात्मा उनकी गोद का बालक बन जाए।

माताजी का प्रेम हमें नई अन्तदृष्टि व आध्यात्मिक ग्रहण शक्ति देता है। माताजी की चेतना के प्रति खुलना, उनके प्यार व उनके प्रकाश की ओर उन्मुख होना, चाहे वे भौतिक रूप में हमारे निकट हों या नहीं, हमारे जीवन का सर्वोत्तम उपहार है।

श्री माँ के प्रेम एवं संरक्षण में दृढ़ विश्वास रखो और अन्य हर उस सुझाव व प्रभाव का अविश्वास करो जो इसका विरोध करती प्रतीत हो ।

माँ से उस भावना, प्रवृत्ति और प्रेरणा का तुरन्त तिरस्कार करो जो तुम्हें दूर खींचती हों, माँ के प्रति तुम्हारे सम्बन्ध, आन्तरिक सामीप्य और विश्वास को आघात पहुँचाती हों ।

बाहरी संकेतों प्रतीकों एवं लक्ष्यों पर ज्यादा जोर मत दो। उनके विषय में तुम्हारा अल्प बोध तुम्हें आसानी से गुमराह कर देगा। अपने को सदा माँ की ओर खुला रखो। अपनी आन्तरिक भावना में उन्हें समीप पाओ। तब तुम उन्हें अपने निकट ही प्रतीत करोगे और उन संकेतों को पाओगे जो वे तुम्हें दे रही हैं और जिन पर तुम्हारे लिए कार्य कर रही हैं।

***

माताजी बताती हैं....

पृथ्वी की शुरूआत से ही, जब कभी और जहाँ कहीं, चेतना की एक किरण के आविर्भाव की सम्भावना हुई, मैं वहाँ विद्यमान थी।

यह जो तुम्हारे सामने खड़ा देह रूपी अस्तित्व तुमसे कुछ बोल रहा है, भगवान का एक बहुत वफादार सेवक है। हर काल में पृथ्वी की शुरूआत से ही वह अपने प्रभू के एक सेवक के रूप में अपने स्वामी की ओर से कुछ बोलता बताता रहा है और जब तक पृथ्वी और मनुष्य का अस्तित्व है यह सदैव प्रभु के शब्द तुम तक पहुँचाता रहेगा ।

मेरे इस भौतिक शरीर और अस्तित्व के बारे में प्रश्न मत करो। यह अपने में कोई बहुत ध्यान देने योग्य बात नहीं है। इस पूरे जीवन में जाने-अनजाने में वही रही हूँ जो उस प्रभु ने मुझे बनाना चाहा। मैंने वही किया है जो उस प्रभू ने मुझसे कराना चाहा । बस वही बात ध्यान देने योग्य है।

जो कुछ वे प्रभू मुझसे कहने के लिए आदेश देते हैं, मैं यथासम्भव श्रेष्ठ रूप में उनके एक विनम्र सेवक की तरह तुम लोगों को बता देती हूँ। किसी खास सिद्धान्त या व्यक्ति के नाम पर चाहे वह कितना ही ऊंचा उठ चुका हो में कभी नहीं कहूँगी।

हमारा कोई धर्म नहीं है। हम धर्म के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन को रखते हैं जो एक ही साथ अधिक गहरा, अधिक सच्चा और उच्च हैं- यानि भगवान के अधिक समीप है क्योंकि वे प्रभू सर्वमय हैं, जड़-चेतन कुछ भी उनसे रहित नहीं है। केवल कमी है कि हम उनके बारे में सचेतन नहीं हैं और यही वह विशाल प्रगति है जो मनुष्य को करनी चाहिए।

सच्चाई, निष्कपटता, वफादारी, विनम्रता और कृतज्ञता वे अनिवार्य गुण हैं जिनके बिना प्रगति अनिश्चित है ।

परवाह मत करो कि लोग क्या कहते हैं। वे अज्ञान है, उनका निर्णय तुम्हें कहीं नहीं ले जायगा। सदैव सर्वोच्च प्रेम, प्रकाश और शान्ति की व्यापकता में रहना सीखना चाहिए - यही भगवान का कानून है ।

***

माताजी के सन्देश

कठिन वक्त पृथ्वी पर आता है मनुष्य को विवश करने के लिए कि वह क्षुद्र अहंकार से ऊपर उठे और प्रकाश एवम् बल प्राप्त करने के लिए भगवान की ओर उन्मुख हो । मानवीय प्रज्ञा अज्ञानजनित होती है, सिर्फ भगवान ही सब कुछ जानते हैं।

मनुष्यों के मध्य रहकर भी अपने को एकाकी महसूस करना ही वह चिह्न है कि अब तुम अपने भीतर भगवान की उपस्थिति ढूंढने का प्रयास करो। एक वक्त ऐसा आता है जब जीवन भगवान के सामीप्य के बिना असह्य हो जाता है। ऐसे वक्त पूरी तरह अपने को भगवान को सौंप दो और तुम पुनः उनके प्रकाश में उदित हो उठोगे ।

ऐसा होता है कि किसी एक मुहूर्त्त में सहसा कोई यह सोचने लगता है कि वह यहाँ इस पृथ्वी पर बिना कारण, बिना प्रयोजन के नहीं आया है; कि उसे कुछ करना है और वह 'कुछ' उसके अहंकार से पीड़ित नहीं है। इस क्षण के परिचय का पहला प्रश्न है कि मैं यहाँ क्यों हूँ, किस कारण हूँ, मेरे जीवन का

क्या अभिप्राय है?

मैं उस दिन की राह देख रही हूँ जब व्यवस्था, अव्यवस्था पर विजय पायेगी और सामन्जस्य पृथकता का स्वामी होगा। जो लोग वर्तमान समय की इन निम्न गतिविधियों से मेरे साथ मिलकर लड़ रहे हैं, उनके साथ मेरी शक्ति और सहायता सघन रूप में है। मैं उनसे यही चाहती हूँ कि वे आश्वस्त रहे, दृढ रहें, सहन करें, सत्य की विजय होगी।

ओह ! तुम लोग कब जागोगे?
इस जड़ता को विच्छिन्न करोगे?
अज्ञान को अपने से दूर करोगे?
इस दिव्य रोशनी का स्पर्श पाकर
सत्य जीवन में डुबकी लगाओगे?
कब? कब वह सौभाग्यशाली और अद्भुत दिवस आएगा?

श्री माँ का भारत- आगमन

सुरेश चन्द्र त्यागी (चेतना के शिखर)

बाह्य रूप से साधारण-सी दिखने वाली घटना में कितने गंभीर और विराट् अर्थ अन्तर्निहित होते हैं, इसका अनुमान सामान्य बुध्दि नहीं कर सकती। ऐसी ही एक घटना 29 मार्च 1914 को घटी थी। चेतना के विकास के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी यह। विकास-यात्रा में सहयात्री बनकर मानवीय से अतिमानवीय चेतना की ओर बढ़ चलने का यह संकल्प-दिवस था। यह घटना तब घटी थी जब अरविन्द 'श्री अरविन्द नहीं हुए थे और न 'मीरा' ही 'श्री माँ' बनी थी। इस घटना के लगभग सोलह वर्ष बाद श्रीमाँ ने कहा था-"जब मैं पहली बार पांडिचेरी में श्री अरविन्द से मिली, तब मैं गहरी एकाग्रता की स्थिति में थी, घटनाओं को 'अतिमानस' (Supermind) में देख रही थी-उन घटनाओं को जो होनी थी लेकिन किसी कारण प्रकट नहीं हो रही थीं

मैंने जो कुछ देखा था, वह श्री अरविन्द को बतलाया और पूछा कि क्या ये प्रकट होंगी। उन्होंने केवल यह कहा- 'हाँ' ! और मैंने तुरन्त ही देखा कि अतिमानस ने धरती का स्पर्श कर लिया है और उसका कार्यान्वयन शुरू हो गया है।

"यही वह समय था जब मैंने पहली बार सत्य को वास्तविक बनाने की शक्ति को साक्षात् देखा था।" (के.र. श्री निवास आयंगर की पुस्तक 'ऑन मदर' से उद्धृत, पृष्ट 86)

पॉल रिचर्ड अप्रैल 1910 में भारत की यात्रा कर चुके थे। तब वह राजनीतिक कार्य से आये थे - एक प्रत्याशी का प्रचार करने। उसी वर्ष 4 अप्रैल को श्री अरविन्द पांडिचेरी पहुँचे थे। पॉल रिचर्ड गुह्य विद्या और आध्यात्मिकता में रुचि रखते थे और मैक्स थिओं (Max Theon) के सम्पर्क में रह चुके थे। पांडिचेरी में उन्होंने अपने परिचितों के बीच किसी योगी से भेंट करने की इच्छा जताई। इसी सिलसिले में श्री अरविन्द का नाम आया जो हाल में ही पांडिचेरी आये थे। उन दिनों श्री अरविन्द गिने-चुने व्यक्तियों से ही मिलते थे। उन्हीं परिचितों में से एक ने पूछा कि एक फ्रांसीसी व्यक्ति मिलना चाहते हैं । श्रीअरविन्द ने मिलने की स्वीकृति दे दी। यह भेंट लगाकर दो देन हुई - प्रतिदिन दो-तीन घण्टे। दोनों के बीच क्या बातचीत हुई, यह विवरण उपलब्ध नहीं होता। कई लेखकों ने लिखा है कि श्री माँ कोई प्रतीक-चिह्न पॉल रिचर्ड के द्वारा भेजा था और किसी गुह्यवेत्ता से इसका अर्थ पूछने को कहा था। श्री अरविन्द ने इस प्रतीक की व्याख्या

समझाई थी। लेकिन श्री माँ ने किसी बातचीत में अनेक वर्ष बाद यह कहा था कि उन्होंने कोई प्रतीक-चिह्न नहीं भेजा था, पॉल रिचर्ड ने स्वयं ही कुछ पूछा होगा।

उस वर्ष के अंत तक पॉल रिचर्ड वापस लौट गये। वह श्री अरविन्द का एक धुधंला-सा फोटो साथ ले गये थे। भारत से लौटे जाने के बाद पॉल रिचर्ड से श्री अरविन्द का पत्राचार भी हुआ था। जिससे दोनों के निरन्तर सम्पर्क का पता लगता है। मीरा और पॉल रिचर्ड का विवाह 5 मई,1911 को हुआ था। एक पत्र में (12 जुलाई 1911) पॉल रिचर्ड को श्री अरविन्द ने लिखा था, "मुझे ऐसे शरण-स्थल की आवश्यकता है जहाँ मैं अपने योग को अविवादित रूप से पूरा कर सकूँ और अपने चारों ओर के दूसरे व्यक्तियों का निर्माण कर सकूँ । मुझे लगता है कि पांडिचेरी ही वह स्थान है जो परे (की शक्तियों के) द्वारा निर्धारित किया गया है लेकिन आप जानते हैं कि भौतिक स्तर पर इस प्रयोजन हेतु आवश्यकता है।.....मैं बहुत स्पष्टतापूर्वक जो महसूस कर रहा हूँ, वह यह कि मेरे योग का प्रमुख उद्देश्य है पूरी तरह और समग्रतया भ्रम एवं अक्षमता के मूल कारण को हटा देना-भ्रम के स्रोत को इसलिए कि मैं मनुष्यों को जिस सत्य के दर्शन कराऊँगा, वह परिपूर्ण हो सके और अक्षमता के स्रोत को इसलिए कि जगत के परिवर्तन का कार्य, जहाँ तक मुझे इस में सहायक होना है, पूर्ण रूप से विजयी एवं अप्रतिरोध्य हो सके।" (कम्प्लीट वर्क्स ऑफ श्री अरविन्द, खण्ड 36,पृष्ठ 283)

पॉल रिचर्ड के भारत आने का संयोग फिर बना 1914 में। लेकिन इस बार कि यात्रा का कारण किसी दूसरे प्रत्याशी का प्रचार करना नहीं था बल्कि स्वयं प्रत्याशी बनकर चुनाव लड़ना था। इस बार अकेले भी नहीं आना था, मीरा को भी साथ लाना था। पहली और दूसरी यात्रा के दौरान क्या-क्या घटा, वह भी एक सूक्ष्म निरीक्षण और अध्ययन का विषय है। मीरा ने आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के बीच जो विचार-विमर्श तब किया था, वह 'वर्ड्स ऑफ लॉन्ग ऑगो' तथा 'प्रेयर्स एंड मेडिटेशन्स' में मिल जाता है। ऊपरी तौर पर कारण चाहे राजनीतिक रहा हो लेकिन श्रीअरविन्द के साथ पॉल रिचर्ड की घनिष्ठता बढ़ जाने से भारत के प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण कम महत्वपूर्ण कारण नहीं था। इस घनिष्ठता का प्रमाण अप्रैल 1914 में मोती लाल राय को लिखे श्री अरविन्द के एक पत्र में मिलता है - "मैं आज एम.पॉल रिचर्ड का चुनावी घोषणा-पत्र भेज रहा हूँ। वह फ्रेंच चैम्बर के लिए होने वाले आगामी चुनाव के प्रत्याशियों में एक हैं। यह चुनाव हमारे लिए कुछ महत्त्व का है क्योंकि दो प्रत्याशी ऐसे हैं जो बहुत हद तक हमारे विचारों का प्रतिनिधित्व करते है।– लापोर्टे (Laporte) और रिचर्ड Richard)। मेरे व्यक्तिगत मित्र और योग में मेरे बंधु ही नहीं हैं, बल्कि वह मेरी तरह और अपने ही ढ़ग से विश्व के पुनरुद्धार का कार्य कर रहें हैं जिससे वर्तमान यूरोपीय सभ्यता आध्यात्मिक सभ्यता का स्थान लेगी।.....वे और श्रीमती रिचर्ड उन यूरोपीय योगियों के विरल उदाहरण है जो थियोसोफिकल और अन्य मार्गों की ओर नहीं गये थे। मैं पिछले चार वर्षों से उनके साथ सांसारिक और आध्यात्मिक पत्राचार कर रहा हूँ।.....यदि रिचर्ड फ्रेंच इण्डिया के डिप्टी बन जायें तो इसका व्यवहारिक अर्थ यह होगा कि मैं ही फ्रेंच इण्डिया का डिप्टी बन जाऊँगा।" (कम्प्लीट वर्क्स ऑफ श्री अरविन्द, खंड 36,पृष्ठ 195)

भारत के बारे में और विशेषत: उसकी चिन्तन धारा के बारे में मीरा को जानकारी दो ग्रन्थों के

माध्यम से मिली थी- गीता और स्वामी विवेकानन्द का 'राजयोग'। भारत की यात्रा का सुयोग बना तो मीरा की प्रसन्नता स्वाभाविक थी। उन्होंने 3 मार्च 1914 को अपनी डायरी में लिखा-"जैसे-जैसे प्रस्थान का दिन निकट आ रहा है, मैं एक प्रकार के आत्म- सम्पर्क में प्रवेश कर रही हूँ। मैं एक स्नेहशील गांभीर्य के साथ अपने चारों ओर की उन हजारों नगण्य वस्तुओं की ओर मुड़ रही हूँ। जिन्होंने इतने वर्षों से मौन रहकर विश्वसनीय मित्रों की अपनी भूमिका निभाई है । मैं कृतज्ञतापूर्वक उनको धन्यवाद देती हूँ जो हमारे जीवन के बाह्य पक्ष को मनोहरता प्रदान करने में समर्थ हुई हैं ; मैं चाहती हूँ कि यदि हमें छोड़कर कितने भी समय के लिए दूसरों के हाथों में जाना ही उनकी नियति है तो वे हाथ उनके प्रति कोमल रहें और उनके प्रति देय उस सम्मान को समझें जिसे तेरा दिव्य प्रेम, हे प्रभु, अव्यवस्था की अंधकारपूर्ण अचेतनता से बाहर ले आया है।

फिर मैं भविष्य की ओर मुड़ती हूँ और अधिक गंभीर हो उठती हूँ। हमारे लिए उसने अपने भंडार में क्या सुरक्षित रखा है, यह मैं नहीं जानती और न जानना चाहती हूँ ; बाह्य परिस्थितियों का कतई महत्व नहीं हैं ; मैं केवल यह चाहती हूँ कि यह हमारे लिए एक नूतन आंतरिक युग का प्रारंभ हो जिससे हम भौतिक वस्तुओं से अधिक अनासक्त रहते हुए तेरी नियम- व्यवस्था के प्रति और अधिक एकनिष्ठा होकर समर्पण कर सकें ; चाहती हूँ कि भविष्य एक महत्तर प्रकाश का महत्तर प्रेम का, तेरे कार्य के प्रति और अधिक परिपूर्ण समर्पण का काल हो।" (प्रेयर्स एंड मेडिटेशन्स, पृष्ठ 93)

इसमें दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं- भौतिक वस्तुओं के प्रति दृष्टिकोण और भविष्य के प्रति एकनिष्ठ एवं परिपूर्ण समर्पण की भाव। एक बार श्रीअरविन्द आश्रम के साधकों को श्री माँ ने कहा था-"व्यक्ति जिन भौतिक वस्तुओं का प्रयोग करता है, उनकी परवाह न करना अविवेक और अज्ञान का लक्षण है।

यदि तुम किसी भी भौतिक वस्तु का, चाहे वह कुछ भी हो, ध्यान नहीं रखते तो उसका इस्तेमाल करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं..... क्योंकि यह दिव्य चेतना के कुछ अंश को प्रकट करती है।"

अपने संस्मरणों में नलिनीकांत गुप्त ने लिखा है कि श्री माँ ने हमें "अपनी वस्तुओं का ध्यानपूर्वक इस्तेमाल करना सिखाया ।.....श्री माँ वस्तुओं का प्रयोग केवल ध्यानपूर्वक ही नहीं बल्कि प्रेम और स्नेह से करती हैं। क्योंकि उनके लिए भौतिक वस्तुएँ केवल निर्जीव पदार्थ नहीं हैं, मात्र प्राणहीन साधन नहीं हैं। वे अपने जीवन से सम्पन्न हैं, उनकी अपनी चेतना है और हरेक वस्तु की अपनी विशिष्टता और स्वभाव है।"(रेमिनिसेंसेज,पृष्ठ 80)

पेरिस से प्रस्थान कर मीरा और पॉल रिचर्ड 6 मार्च 1914 को जेनेवा पहुँचे। वहाँ से ट्रेन द्वारा मार्सेलिज गये और 7 मार्च को उन्होंने जापानी जहाज़ 'कागामारू' से अपनी यात्रा प्रारंभ की। 19 मार्च को मीरा ने इस जहाज के बारे में अपनी प्रार्थना में लिखा-"हे प्रभु, मेरे प्रिय स्वामी, मैं इस नाव पर लगातार यह सब अनुभव कर रहीं हूँ। यह नाव मुझे शांति के अद्भुत आवास जैसी, एक मंदिर जैसी लग रही है जो तेरे सम्मान में अवचेतनात्मक निष्क्रियता की लहरों पर चल रही है जिसे हमें जीतना है और तेरी दिव्य

उपस्थिति की चेतना में जागना है।” (प्रयर्स एंड मेडिटेशन्स, पृष्ठ 99

'कागामारु' जहाज कहिरा में रुका और वहाँ मीरा को एक म्यूजियम देखने का अवसर मिला। 13 मार्च को मीरा ने अपनी प्रार्थना में लिखा- “प्रेम के प्रिय स्वामी! कृपा कर के मेरी समस्त चेतना तुझमें एकाग्र हो जाये जिससे मैं केवल प्रेम और प्रकाश द्वारा प्रसारित हो सके तथा हमारी यात्रा में सबके भीतर जाग सके। हमारी यह भौतिक यात्रा हमारे कर्म के प्रतीक की तरह हो और हम सर्वत्र प्रकाश एंव प्रेम के पथ के रुप में तेरा संकेत-चिह्न छोड़ जायें।” (प्रेयर्स एंड मेडिटेशन्स, पृष्ठ 104)

फिर 28 मार्च को उन्होंने लिखा- “अपने प्रस्थान के समय से प्रतिदिन ही हम अधिकाधिक सब कार्यों में तेरा दिव्य हस्तक्षेप देख रहे हैं, सर्वत्र तेरी नियम –व्यवस्था अभिव्यक्त हो रही है और मैं अपेक्षा करती हूँ कि मेरा आंतरिक विश्वास यह अनुभव करे कि यह सब पूर्णरूपता स्वाभाविक है जिससे मैं एक आश्चर्य के बाद दूसरा आश्चर्य अनुभव न करती रहूँ। “(वही, पृष्ठ 122)

अनेक वर्षो बाद 23 मई 1956 को श्री माँ ने एक बातचीत में इस यात्रा के दौरान घटी एक घटना की चर्चा की थी। जहाज पर ही कोई धार्मिक आयोजन हुआ। सब यात्री सज-धजकर उसमें शामिल हुए। आयोजन की समाप्ति पर सब थोड़ी देर बाद फिर से पहुँचे, शराब पी और ताश खेलने में लग गये। वह पादरी, जिसने आयोजन सम्पन्न कराया था, श्री माँ के पास आया और पूछा कि आप आयोजन में क्यों नहीं पहुँची ? श्री माँ ने कहा- 'मुझे क्षमा करें। मैं धर्म में विश्वास नहीं करती। ' तो क्या आप भौतिकवादी हैं ?”- उसने पूछा । श्री माँ ने कहा-'कतई नहीं।' पादरी बोला –'फिर ?' पादरी ने बहुत आग्रह किया तो श्री माँ ने कहा –'समझने का प्रयास करें। मुझे नहीं लगता कि आप सत्यनिष्ठा हैं न आप और न आपके विश्वासीगण । आप सब वहाँ एक सामाजिक कर्तव्य पूरा करने गये थे- एक सामाजिक प्रथा निभाने गये थे । इसलिए कतई नहीं कि आप भगवान् के साथ संपर्क करना चाहते थे। ' (क्वेश्चन्स एंड आंस्वर्स 1956, पृष्ठ 149-50)

यात्रा के दौरान लिखी प्रार्थनाओं (7 मार्च से 29 मार्च तक) को देखें तो श्री माँ की मनःस्थिति का तो ज्ञान होता ही है, उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों की भी जानकारी मिलती है।

'कागामारु' जहाज 27 मार्च को कोलम्बो पहुँचा। वहाँ मीरा और पॉल रिचर्ड ने एक बौद्ध मठ देखा । वहाँ से धनुष्कोटि गये और ट्रेन से 28 मार्च को प्रस्थान कर विलुपुरम पहुँचे। वहाँ से पांडिचेरी के लिए ट्रेन बदलकर 29 मार्च को प्रात: पांडिचेरी पहुँच गये । वहाँ वे सफरेन स्ट्रीट पर 'होटल द यूरोप' के कमरे में ठहरे।

श्री अरविन्द दिसम्बर 1913 में अपने गिने-चुने शिष्यों के साथ मिशन स्ट्रीट के छोटे –से आवास को छोड़कर नये बड़े आवास 41, रयू फ्रैंक मार्टिन में आ गये थे, जो अब गेस्ट हाउस के नाम से जाना जाता है । अमृत ने इस नये आवास के बारे में लिखा था-“इस भवन के भीतरी भाग में , बरामदे के एक किनारे पर एक चौड़ा जीना था जो पहली मंजिल तक ले जाता था। .....यह घर बड़ा था लेकिन सुनसान लगता था। ऊपरी मंजिल में बड़े कमरे थे और एक विस्तृत बरामदा था।...... पश्चिम के कोने में एक बड़ा

कक्ष था सामने का कमरा और छज्जा- इन तीनों को घर का सर्वोत्तम भाग समझा गया और इनको श्री अरविन्द के लिए अलग कर दिया गया।"(रेमिनीसेन्सेज, पृष्ठ 163)

इस मकान को रहने लायक बनाने के लिए हर संभव प्रयास किया गया। बिजली के प्रकाश की व्यवस्था की गई, कुछ फर्नीचर जुटाया गया! अमृत ने लिखा है कि इसी समय यह फैली कि दो यूरोपियनों ने श्री अरविन्द को गुरु मान लिया है और फ्रांस के उच्च सांस्कृतिक समाज से दो व्यक्ति योग–साधना के लिए आने वाले हैं । तब शिष्यों में उत्सुकता स्वाभाविक ही थी। इसी घर में श्री माँ की प्रथम साक्षात् भेंट हुई थी ।

श्री माँ ने इस भेंट के बारे में कहा है-"मुझमें कोई चीज थी जो श्री अरविन्द से पहली बार नितान्त अकेले ही मिलना चाहती थी। रिचर्ड श्री अरविन्द से मिलने सुबह के समय गये थे और मुझे तीसरे पहर का समय मिला था। श्री अरविन्द पुराने गेस्ट हाउस में रह रहे थे। मैं जीने पर चढ़ी और वह वहाँ पर खड़े हुए थे – सीढ़ियों से ऊपर मेरी प्रतीक्षा करते हुए। ठीक मेरा विजन था यह ! वही पहलवान था, वही स्थिति थी और वही रूपरेखा । उनका सिर ऊपर उठा हुआ था। उन्होंने अपना चेहरा मेरी ओर घुमाया और मैंने उनकी आँखों में देखा कि यह तो 'वही' थे। "(सुजाता नहर: दि मदर्स करोनिकिल्स, खण्ड 5,पृष्ठ 580)

ये ही क्षण थे जब श्री अरविन्द ने मीरा के व्यक्तित्व में उन भगवती माता की झलक देखी थी जिसका वर्णन 'माता' पुस्तक में किया गया है । 'सावित्री' की इन पंक्तियों में क्या इसी भेंट की झलक नहीं है?

Here first met on the uncertain earth
The one whom her heart had come so far
Attracted as in heaven star by star,
They wondered at each other and rejoiced
And wove affinity in a silent gaze.
A moment passed that was eternity's ray.
An hour began, the maturity time.

के.डी. सेठना ने इस भेंट के बारे में लिखा है कि "श्री अरविन्द से भेंट के पूर्व....श्री माँ के पास जगत् के उत्थान के लिए हर तरह के सशक्त विचार थे- कला के बारे में, समाज और धर्म के बारे में। श्री अरविन्द के दर्शन कर उन्होंने सभी मानसिक ढ़ाँचों पर पूर्व विराम लगाने की अभीप्सा की। उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा, न श्री अरविन्द ने कुछ बोला । वह उनके चरणों में बैठ गई और अपनी आँखे बूँद लीं - उनके प्रति अपने मन को खुला रखते हुए थोड़ी देर बाद वहाँ, ऊपर से, अनन्त शांति का अवतरण हुआ जो श्री माँ के मन में बस गई। सब कुछ समाप्त हो गया, वे सारे सुन्दर और महान् विचार गायब हो गये और वहाँ विद्यमान थी मात्र मन से परे के सत्य की शून्य निर्विकार प्रतीक्षा ।" (मदर इण्डिया, फरवरी 1958 अंक)

इस भेंट के बाद श्री अरविन्द ने अपनी डायरी में उसी दिन (29.3.1914) लिखा और यह ज्ञातव्य है कि श्री अरविन्द और श्री माँ-दोनों ही उन तत्वत: एक समान मार्गों पर आंतरिक जीवन की ओर बढ़ रहे थे जो आत्मा (Spirit) और भौतिक तत्व (Matter) को जोड़ते हैं । इसलिए उनके द्वारा शक्तियों को संयुक्त करना अत्यन्त स्वाभाविक बात थी और यह केवल शक्तियों को दुगुना करने की बात नहीं थी बल्कि यह था पूरकताओं को जोड़ना।

श्री अरविन्द के चेतना के मुख्य आन्दोलन को मन के ऊपर की असीम ज्ञान-शक्ति कहा जा सकता है, यद्यपि सर्वांगीण आध्यात्मिकता के लिए जो कुछ आन्दोलन हृदय के पीछे की तीव्र प्रेम –शक्ति का कहा जा सकता है लेकिन इसमें एक तैयार उपकरण के रुप में सर्वतोमुखी योग के लिए अपेक्षित सब कुछ उपस्थित था। जब श्री माँ और श्री अरविन्द की भेंट हुई तो उन्होंने एक दूसरे को पूर्णता प्रदान की , दोनों ने उन आध्यात्मिक शक्तियों की क्रीड़ा पूर्वरूप में प्रारंभ की जो उनमें विद्यमान थी और ऊपर की ऊँचाई एंव भीतर की गहराई से पूर्ण पार्थिव रूपान्तर का कार्य शुरू किया।" (मदर इण्डिया , फरवरी 1973)

श्री अरविन्द एंव श्री माँ की प्रथम भेंट पर उनके अद्धितीय एंव अभूतपूर्व कार्य के प्रति विनम्र समर्पण तथा सत्यनिष्ठा के साथ आगे बढ़ने का संकल्प हमें अग्रसर करे, यह अभीप्सा ही हमारा संबल है।

श्रीअरविन्द के कुछ वचनों की व्याख्या

“आंतरिक सत्ता की मुक्ति”

-श्रीमाँ

जब व्यक्ति साधना की प्रारम्भिक अवस्था में होता है तो उसे प्राय: ही यह प्रतीत होता है कि आंतरात्मिक सत्ता एक प्रकार के आवरण या कारागार में बन्द है जो उसे अपने और स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने से रोक सकता है। जब व्यक्ति आंतरात्मिक सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है तो उसे बिलकुल यही अनुभव होता है कि वह या तो उन दीवारों के पीछे प्राप्त हो सकती है जिन्हें उसे तोड़ना पड़ेगा, या वह ऐसे द्वार के पीछे स्थित है जिसे बलपूर्वक खोलकर ही वह प्रवेश पा सकता है। यदि कोई इन दीवारों को तोड़ सके या द्वार को खोल सके तो आंतरात्मिक सत्ता मुक्त हो जाती हैं, और तब वह बाह्य रुप में भी अपने आपको अभिव्यक्त कर सकती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये अपने आपमें प्रतिरुप हैं। स्वभावत: ही प्रत्येक का अपना–अपना रुप और प्रत्येक की अपनी–अपनी प्रक्रिया है। किन्तु छोटी– मोटी विभिन्नताओं के होते हुए भी इनमें से कुछ प्रतिरुप उन सबके लिए सामान्य हैं जिन्होंने वह अनुभूति प्राप्त कर ली है। उदाहरणार्थ, जब व्यक्ति अपनी चेतना के गहरे तल में अन्तरात्मा को ढूँढने के लिए अपनी सत्ता की गहराई में उतरता है तो प्राय: ही उसे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी गहरे कुँए में, अधिकाधिक नीचे उतर रहा है मानों वह सचमुच ही कुँए के तल में डुबकी लगा रहा हो। यह तो है एक तुलनामात्र, पर यदि अनुभव के साथ ये सब बातें जोड़ दी जायें तो उसे अधिक शक्ति और मूर्त्त वास्तविकता प्रदान करती हैं।

जब मनुष्य अपनी आंतरिक सत्ता की तथा उस सत्ता का निर्माण करनेवाले भिन्न-भिन्न भागों की खोज करने लगता है, तो उसे प्राय: ही ऐसा प्रतीत होता है मानों वह किसी बड़े दालान या कमरे में घुस रहा हो, और उसके रंग, वातावरण तथा अन्दर की वस्तुओं के अनुसार उसे सत्ता के उस भाग का स्पष्ट बोध हो जाता है जिसमें वह प्रवेश कर रहा है। इसके बाद वह अधिकाधिक गहरे भोगों की और बढ़ सकता है, इसमें से प्रत्येक भाग का अपना–अपना विशिष्ट स्वभाव होता है।

अधिकतर तो ये आंतरिक प्रवेश रात को ही होते हैं, उस दशा में ये कुछ स्वप्नों के समान अधिक मूर्त्त रुप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार तुम्हें ऐसा प्रतीत होता है कि तुम एक घर में प्रवेश कर रहे हो और उस घर से तुम खूब परिचित हो। काल और युग के अनुसार वह अन्दर से भिन्न प्रतीत हो सकता है। कभी- कभी वह बड़ी अस्तव्यस्त और गड़बड़ी की अवस्था में भी होता है अथवा उसकी सब वस्तुएं एक- में- एक मिली

पड़ी होती हैं। कभी-कभी सब चीजें टूटी–फूटी अवस्था में भी दिखाई देती हैं। संक्षेप में, वहाँ अस्तव्यस्तता का पूर्ण साम्राज्य होता है। इसके विपरीत, किसी समय वही सब वस्तुएँ व्यवस्था में भी आ जाती हैं, तब वे सब अपने-अपने स्थान पर रखी होती हैं मानों किसी ने झाड़–पोंछकर घर का सब सामान ठीक स्थान पर रख दिया हो। पर फिर भी घर सदा वही होता है।

वस्तुत: यह घर तुम्हारी आंतरिक अवस्था का एक बाह्य प्रतिरुप है । और जो कुछ वहाँ देखते हो, जो कुछ तुम करते हो वह तुम्हारे मनोवैज्ञानिक कार्य का प्रतीकात्मक चित्र होता है। यह बात अनुभव को मूर्त्त रुप देने के लिए आत्यधिक उपयोगी है।

कुछ लोग केवल बौद्धिक होते हैं; उनके सामने सब कुछ प्रतिरुपों द्वारा व्यक्त होता है। किन्तु जब कभी ये लोग अधिक भौतिक प्रदेश में उतरना चाहते हैं तो वे वस्तुओं के मूर्त्त रुप को नहीं छू सकते, वे केवल विचारों के प्रदेश अर्थात् मन में ही कार्य कर सकते हैं और अनिश्चित काल तक वहीं पड़े रहते हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य सोचता है कि वह विकास कर रहा है और वह मानसिक रुप में विकास कर भी रहा होता है, किन्तु विकास की कोई सीमा नहीं है, वह सहस्त्रों वर्षों तक चलता रह सकता है। कारण, विकास का क्षेत्र अत्यन्त विशाल एवं अ-निर्धारित है और वह सदा नये-नये रुप धारण करता रहा है।

किन्तु यदि मनुष्य अपने प्राणिक और भौतिक पक्ष में भी उन्नति करना चाहता है तो यह प्रतीकात्मक रुप कर्म को निश्चितता तथा अधिक वास्तविकता प्रदान करने में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है। स्वभावतः, तुम एक ऐसे बन्द दरवाजे के सामने ध्यान में बैठे हो जो कांसे के भारी दरवाजे के समान प्रतीत होता है। तुम वहाँ शान्त रहते हो और इच्छा करते हो कि द्वार खुल जाय और तुम उसके दूसरी ओर चले जाओ। तब तुम्हारी समग्र एकाग्रता, समस्त अभीप्सा इकट्ठी होकर उस द्वार पर धक्का मारने के लिए प्रेरित होता है, वह अधिकाधिक वेग के साथ धक्का लगाती है, और तब एकदम द्वार खुल जाता है। और तुम शीघ्रतापूर्वक प्रकाश के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हो। यह एक शक्तिशाली और अविस्मरणीय अनुभव है। तुम्हें चेतना के अचानक और आमूल परिवर्तन से पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है, इसके साथ ही तुम्हें वह प्रकाश भी मिलता है जो तुम्हें पूर्णतया अपने वश में कर लेता है और तुम्हें ऐसा अनुभव होता है कि तुम एक दूसरे ही व्यक्ति बन गये हो। अपनी आंतरात्मिक सत्ता के साथ सम्पर्क स्थापित करने का अत्यधिक मूर्त्त और प्रभावशाली साधन है।

सहस्त्रों में कोई एक भी ऐसा नहीं होता जो, क्षण भर के लिए भी व्यक्त रुप में अपनी आंतरात्मिक सत्ता के साथ चेतन सम्पर्क रख सके। आंतरात्मिक सत्ता अन्दर ही अन्दर काम कर सकती है, किन्तु वह इतने अलक्ष्य और अचेतन रुप में करती है कि बाह्य सत्ता को उसका अस्तित्व तक अनुभव नहीं होता। अधिकतर अवस्थाओं में, सच पूछो तो प्रायः सभी अवस्थाओं में, ऐसा प्रतीत होता है मानों वह सोई पड़ी है, बिलकुल निष्क्रिय और तंद्रा की अवस्था में पड़ी है।

केवल साधना और अनवरत प्रयत्न से ही मनुष्य अपनी आंतरात्मिक सत्ता के साथ चेतन सम्बन्ध

स्थापित करता है। स्वभावतः ही कुछ दृष्टान्त इसके अपवादस्वरुप भी हैं जिनमें आंतरात्मिक सत्ता एक पूर्ण विकसित सत्ता होती है, स्वतंत्र और अपनी स्वामिनी और तब वह अपना कार्य करने के लिए स्वेच्छा से मनुष्य शरीर में जन्म लेती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति चेतन रुप में साधना न भी करे, तो भी अन्तरात्मा इतनी शक्तिशाली हो सकती है कि वह उसके साथ कम या अधिक चेतन रुप सम्बन्ध स्थापित कर ले। किन्तु ऐसे दृष्टान्त बहुत ही कम होते हैं। साधारणतया तो अपनी आंतरात्मिक सत्ता के प्रति सचेतन होने के लिए मनुष्य को स्थिरतापूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है। यह कहा जाता है कि यदि तुम तीस वर्ष तक अनवरत प्रयत्न करके भी इस तक पहुँच जाओ तो यह तुम्हारे लिए एक सौभाग्य की बात होगी। पर इसमें कम समय भी लग सकता है। किन्तु जो ऐसा कर सकते हैं वे महान योगी होते हैं और पहले से ही इस कार्य में दीक्षित होते हैं, उन्हें कुछ हद तक दिव्य सत्ताएँ भी कहा जा सकता है।

"एकाग्रता करने के स्थान पर शरीर को ढीला छोड़कर ध्यान भी किया जा सकता है।"

ध्यान के कई प्रकार होते हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं। जिसे लोग साधारणतया ध्यान कहते है वह एक विषय या विचार को चुन लेना है तथा उस विषय या विचार के ध्यान के अन्दर एकाग्रता तो है, किन्तु वह उतनी पूर्ण नहीं है जितनी कि एक विशुद्ध एकाग्र चिंतन में होती है जहाँ उस बिन्दु के अतिरिक्त जिस पर एकाग्रता की जाती है और किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं रहता।

ध्यान की क्रिया एकाग्रता से प्राधिक नमनीय होती है और उस में तनाव भी कम होता है। उदाहरणार्थ, जब मनुष्य किसी समस्या को समझता है, वह समस्या चाहे मनोवैज्ञानिक हो चाहे साधारण परिस्थितियों के समूह से सम्बन्ध रखती हो वह उस पर विचार करता है, अपनी तर्कबुद्धि की सहायता लेता है, वह उससे सम्बन्धित समस्त संभावनाओं के बारे में सोचता है, उनकी परस्पर तुलना करता है, उनका अध्ययन करता है। यह एक प्रकार का ध्यान है। जब-जब इसकी आवश्यकता पड़ती है वह सहज भाव में ऐसा ही करता है।

ध्यान का एक प्रकार यह भी है कि व्यक्ति एक ही विचार पर अपना समस्त ध्यान एकाग्र कर लेता है और तब उसके लिए केवल उसी का अस्तित्व रहता है। यह भी 'एकाग्रता' के ही समान है, किन्तु सर्वांगीण होने के स्थान पर यह केवल मानसिक होता है। सर्वांगीण एकाग्रता का अर्थ प्राण और शरीर की भी सब गति-विधियों की एकाग्रता है।

एक नियत बिन्दु पर स्थिरतापूर्वक ध्यान जमाने की प्रक्रिया से सभी अच्छी तरह परिचित हैं। एकाग्रता शरीर की भी होती है, मनुष्य एक बिन्दु पर अपनी दृष्टि जमा लेता है और अपनी आँखें बन्द कर लेता है और उन्हें उससे जरा भी इधर उधर नहीं हटाता। इसका परिणाम साधारणतया यह होता है कि व्यक्ति स्वयं ही वह बिन्दु बन जाता है। मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानती हूँ जो कहता था कि वह उस बिन्दु के भी आगे निकल जाता है, अर्थात् वह उससे इस हद तक तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि वह उसके अन्दर से होकर उसके दूसरे छोर तक पहुंच जाता है और उसके बाद उच्च प्रदेशों में प्रविष्ट हो जाता है।

जो भी हो, यह सत्य है कि यदि मनुष्य किसी वस्तु पर पूर्ण एकाग्रता प्राप्त कर लेता है तो एक ऐसा क्षण अवश्य प्राप्त है जब कि तादात्म्य पूर्ण हो जाता है और तब जो व्यक्ति एकाग्रता कर रहा है उसमें तथा जिस पर एकाग्रता की जा रही है उसमें कोई भेद नहीं रहता। इसी को सर्वांगीण एकाग्रता कहते हैं, जबकि ध्यान विचार की एक विशेष एकाग्रता है अर्थात् वह एक आंशिक एकाग्रता है। किन्तु एकाग्र करने का अर्थ अपने आपको सीमित करना है। मनुष्य एक ही समय बहुत से विषयों पर अपने आपको एकाग्र नहीं कर सकता नहीं तो वह एकाग्रता ही नहीं रहेगी ।

"समस्त कर्म को अनुभव-प्राप्ति का एक विद्यालय होना चाहिये"

यदि मनुष्य कुछ न करे तो उसे तो अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता । समस्त जीवन ही अनुभव प्राप्ति का क्षेत्र हैः प्रत्येक विचार जो व्यक्ति करता है एक अनुभव हो सकता है और उसे ऐसा होना चाहिये भी। विशेषतया कर्म अनुभव का एक ऐसा स्वाभाविक क्षेत्र होता है जहाँ व्यक्ति को उस समस्त उन्नति को जिसे वह अपने अन्दर करने का यत्न करता है कार्यरुप देना चाहिये।

यदी तुम कार्य नहीं करते, केवल ध्यान और चिंतन में ही लगे रहते हो, यदि तुम कुछ भी काम किये बिना अपने अन्दर ही बन्द रहते हो तो तुम यह नहीं जान पाते कि तुमने उन्नति की भी है या नहीं। ऐसी अवस्था में तुम अपने विषय में एक पूर्ण आंतरिक शान्ति में, अपनी उन्नति की शान्ति में, निवास करने लगते हो। इसके विपरीत, जब तुम कोई कार्य करते हो तो तुम्हारे कार्य की सब परिस्थितियाँ, दूसरों के साथ तुम्हारे सम्बन्ध और भौतिक प्रकार के कामकाज का अनुभव एक ऐसा क्षेत्र बन जाते हैं जहाँ तुम सचमुच कुछ कर सकते हो। वहाँ तुम्हें यही पता नहीं लगता कि तुमने क्या प्रगति की है बल्कि यह भी कि क्या अभी करनी है। जिस क्षण तुम अपने को कर्म में बहिर्मुख करते हो तथा दूसरों के साथ और जीवन सम्बन्धी घटनाओं और वस्तुओं के साथ सम्पर्क में आते हो तो तुम पूर्णतया गोचर रुप में यह जान सकते हो कि तुमने प्रगति की है या नहीः तुम अधिक शान्त, अधिक चेतन, अधिक सशक्त, अधिक निःस्वार्थ हो गये हो या नहीं, तुम्हारे अन्दर कोई इच्छा या अभिरुप अथवा कोई दुर्बलता और असत्यता रही है या नहीं - यह सब तुम्हें काम करते हुए ही पता लगता है।

बिना कर्म के तुम्हें सदा एक पूर्ण शान्ति में ग्रस्त होने का भय रहता है, जिसमें से तुम निकल भी नहीं सकते। तुम्हें यह विश्वास हो जाता है कि तुमने कुछ असाधारण अनुभव प्राप्त कर लिए हैं जबकि तुम्हें केवल अपनी उन्नति की प्रतीतिमात्र हुई होती है।

"वैश्व चेतना में विस्तारोन्मुख उद्घाटन"

मनुष्य को सदा ही 'सर्वोच्च चेतना' की ऊँचाइयों की ओर ऊर्ध्वमुखी आरोहण का अथवा वैश्व चेतना के एक अर्थ में प्रकार के दिगंतसम विस्तार का अनुभव होता है। वैश्व (या जागतिक) चेतना से श्रीअरविन्द का अभिप्राय उन शक्तियों की चेतना को अधिकृत करना है जो विश्व में और सब व्यक्त वस्तुओं में अधिकृत करना है जो विश्व में और सब व्यक्त वस्तुओं में अपने आपको प्रकट करती हैं। उदाहरणार्थ, इस जगत में इस प्रकार के अनेक लोग हैं, हम उन्हें विश्व के प्रतिनिधि के रुप में ले सकते हैं। यदि हम उनके साथ एक

होना चाहते हैं, तो हमें अपनी चेतना को सब पर प्रक्षिप्त कर देना होगा जिससे कि हम उन सबके अन्दर प्रविष्ट हो सकें। यह दिगतसम विस्तार की एक गति है।

दूसरी ओर, यदि व्यक्ति उच्च चेतना के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहता है, उसकी अनुभूति यह होती है कि वह अपनी सारी अभीप्सा को एकत्र करने उसे ऊर्ध्वमुखी आरोहण के ऊपर उन उच्च शक्तियों की ओर उठाता है जिन्हें नीचे उतरना ही है। यह तब केवल एक क्रियामात्र होती है, यह विशालता और वस्तार की, या फिर एकाग्रता और आरोहण की क्रिया है।

मन, प्राण और शरीर के लिए नम्र होने का अर्थ है कि वे यह कभी न भूलें कि भगवान के बिना वे कुछ नहीं जानते, वे कुछ नहीं हैं और कुछ नहीं कर सकते, भगवान के बिना वे निरे अज्ञानी, अस्तव्यस्त और निःशक्त है। केवल भगवान ही 'सत्य', 'जीवन', 'शक्ति', 'प्रेम' और 'आनन्द' हैं।

अतएव मन, प्राण और शरीर को सदा के लिए यह सीख लेना तथा अनुभव कर लेना चाहिये कि वे भगवान को केवल उनके सारतत्तव में ही नहीं बल्कि उनके कर्म और उनकी अभिव्यक्ति में भी समझने तथी उनके विषय में कोई सम्मति बनाने में सर्वथा असमर्थ है।

यही सच्ची नम्रता है; इसके साथ ही स्निग्धता और शान्ति का अविर्भाव होता है।

यह समस्त विरोधी आक्रमणों के लिए एक अत्यधिक सुरक्षित ढाल का भी काम करती है। वस्तुतः मनुष्य में अभिमान एक ऐसा द्वार है जिसे शत्रु इसलिए खटखटाता है कि वह उसके प्रवेश के लिए रास्ता खोलता है।

सत्यवान की धरती फिर से खोज रही

डॉ. देवकीनंदन श्रीवास्तव

अभिनव सावित्री के युगस्रष्टा को
सत्यवान की धरती फिर से खोज रही है।
सौ-सौ आवरणों में लिपटी सत्ताओं के अटपटे हास।
सुन कर जिसका आह्वान दिव्य हो उठे अनावृत अनायास ॥
अभिनव आरोहण के अनुमन्ता को
सत्यवान की धरती फिर से खोज रही है।

चेतन अवचेतन औ अतिचेतन की जानी अनजानी राहों में।
पदचिन्ह छोड़ती चली अडिग गति जिसकी सजल प्रवाहों में ॥
अभिनव जययात्रा के उद्गाता को
सत्यवान की धरती फिर से खोज रही है।

सौंदर्य कलाओं का बन प्राण ज्ञान विज्ञानों का
जिसकी प्रज्ञा में चमक उठा ॥
अवतरण शक्तियों का, बन त्राण सहज विश्वासों का
जिसकी गोदी में किलक उठा ॥
अभिनव प्रतिमानों के निर्माता को
सत्यवान की धरती फिर से खोज रही है।

बंधन में लीला का अखण्ड रस जिसके संकेतों पर उमड़ पड़ा।
स्पंदन में जिसके मुखर मौन माधुर्य विश्व का मचल पड़ा ॥
अभिनव संसृतियों के संरक्षक को
सत्यवान की धरती फिर से खोज रही है।

प्रेयसी बनी अनगिन आत्माओं की जिसके मुसकानों की छाया।
रोदसी संजोए सतरंगी आभाओं में जिसके मुसकानों की छाया ॥
अभिनव रूपांतर के युगद्रष्टा को
सत्यवान की धरती फिर से खोज रही है।

आश्रम-गतिविधियाँ

8 मार्च 2023

रंगों के त्यौहार होली का शुभारंभ श्रम दान से हुआ। तत्पश्चात मनोरंजक खेलों का आयोजन और संगीतमय प्रस्तुति के पश्चात खुले मैदान में चाँदनी रात में रात्रि भोज के साथ त्योहार का समापन हुआ।

24, 25 और 27 मार्च

करुणा दीदी के 93 वें जन्मदिवस पर तीन दिवसीय संगीतात्मक श्रद्धांजलि प्रदान की गई। 24 को सुश्री सवानी मुद्गल, 25 को सुश्री संघमित्रा चक्रवर्ती एवं 27 को सुश्री अरुंधति भट्टाचार्य ने प्रस्तुति दी।

29 मार्च 2023

यह दिन आश्रम के लिए विशेष महत्व का है। इसी दिन 109 वर्ष पूर्व श्रीमाँ की श्रीअरविंद से प्रथम मुलाकात हुई। समाधि उद्यान में 'लाइट ऑफ एस्पिरेशन', ध्यान-कक्ष में संगीतमय प्रस्तुति और तारा दीदी के वाचन का आयोजन हुआ।

31 मार्च 2023

करुणा दीदी को संगीतमय श्रद्धांजलि प्रदान की गई। वाइलिन पर श्री रंजन कुमार और तबला पर श्री नीरज कुमार थे।

4 अप्रैल 2023

आज से 113 वर्ष पूर्व श्रीअरविंद का पांडेचरी आगमन और आश्रम के तपस्या भवन का स्थापना दिवस मनाया गया।

चित्रकला प्रदर्शनी, श्री स्मृति प्रदर्शनी तथा श्री चेतन जोशी द्वारा बांसुरी वादन की प्रस्तुति की गई। तपस्या भावन को फूल एवं दीपों से सजाया गया।

14 अप्रैल 2023

वैशाखी पर्व पर डॉ.अलंकार सिंह एवं उनके दल ने गुरुबानी की प्रस्तुति की।

24 अप्रैल 2023

103 वर्ष पूर्व 24 अप्रैल 2023श्रीमाँ का स्थायी रूप से पॉण्डिचेरी आगमन हुआ था।आज का दिन 'दर्शन दिवस' कहलाता है।

इस दिन संध्या समय आश्रमवासियों द्वारा समाधि पर परेड करते हुए श्रीमाँ को सलामी दी गई तथा ध्यान-कक्ष में भक्ति संगीत के साथ तारा दीदी ने '24 अप्रैल के महत्व' पर वाचन किया। तत्पश्चात प्रसाद वितरण हुआ।

29 अप्रैल 2023